परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[८, ९, १० भाग]

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक

श्री मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रबन्ध-सम्पादक :

बैजनाथ जैन, ट्रस्टी सदस्य सहजानन्द शास्त्रमाला

यादगार बड़तला, सहारनपुर

प्रकाशक :

खेमचन्द जैन सर्राफ

मंत्री, सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

सहजानंद शास्त्रमाला

परीक्षामुखसूत्र प्रवचन

भाग-9

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी ''सहजानन्द'' महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[नवम भाग]

प्रवक्ता :

(अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी
'सहजानन्द' जी महाराज)

आत्माकी विभवसम्पन्नतामें गौरव - प्रत्येक आत्मा अपने आपको अनुपम वैभव सम्पन्न बनानेकी इच्छा रखता है। यह सभीकी इच्छा है कि मैं अनुपम वैभव सम्पन्न रहूँ किन्तु अपने आपमें समाये हुए सहज ज्ञानानन्द स्वरूपकी सुध नहीं है अतएव बाहरमें वैभवकी खोजकर रहे हैं प्राणी ये पदार्थ जो जड़ हैं, पौद्गलिक हैं सड़ने गलने वाले हैं जिनसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं, स्वरूप भी न्यारा है, हर एक दिशा विपरीत है, ऐसे इन विपरीत विभावोंमें शान्तिकी आशा करते हुए ये मोही प्राणी बाहर ही बाहर भटक रहे हैं। जब काल लब्धि होती अथवा जब उस ज्ञानका जागरण होता है तब ही यह आत्मा पहिचान सकता है कि मेरा सर्वस्व वैभव मेरेमें ही सम्पूर्ण है। मैं मैं एक सत् हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ, स्वयं आनन्द भावको लिए हुए हूँ। मैं देहसे भी निराला इन समस्त झंझटोंसे भी निराला अमूर्त आकाशवत निर्लेप ज्ञानज्योति हूँ।

आत्मविभवपर विश्वास न होनेका कारण—आत्माके ज्ञानानन्द स्वरूपपर प्राणियोंका विश्वास एकदम यों नहीं बैठ पाता कि शरीरका सम्बन्ध चला आ रहा है। और इस सम्बन्धको इस आत्माने अपने आपको ऐसा समर्पित कर दिया है, इन बाह्य पदार्थोंमें अपना उपयोग जमा लिया है कि इसे क्षुधा तृषा आदिक अनेक वेदनाएँ सता रही है, लोग तो यों कह भी बैठते हैं कि क्या धर्म करें, पहिले तो यहाँ भूखका सवाल है, शारीरिक वेदनाओंका सवाल है, वही परेशानियां नहीं मिटती हैं तो हम धर्म क्या करें? इन कारणोंसे आत्मा स्वयं आनन्द स्वरूप है इस बातपर विश्वास नहीं जमता। लेकिन यह तो बतलावो कि आत्मा यदि ज्ञानानन्द स्वरूप न होता तो इन पदार्थोंका मिलनेपर भी, भोजन वस्त्र आदिक इष्ट समागम मिलनेपर भी इसे आनन्द कहाँसे आता? कोई प्यास्टिकका पुतला आदमीकी तरह बनाकर रख दो बड़े अच्छे भोजनों के बीच तो क्या वह उसे खाकर आनन्द मान सकेगा नहीं मान सकेगा। तो हम

आप जब स्वयं आनन्दस्वभावी हैं तभी उन परपदार्थोंके प्रसङ्गमें भी आनन्द पाते हैं। मेरेमें आनन्द गुण न हो तो बाह्य पदार्थोंके सम्बन्धमें भी हम आनन्द नहीं पा सकते।

आत्मज्ञानकी ही परमार्थविभवता—हमारा आनन्द स्वरूप है और ज्ञान असाधारण लक्षण है। इस ज्ञान और आनन्दभावके स्वरूपको ही मैं तकूँ तो अब भी यह अनुभव किया जा सकता है कि मैं सबसे निराला परिपूर्ण ज्ञानानन्दमय सत् हूँ। इसका विश्वास नहीं है अतएव बाहरी पदार्थोंमें इस जीवका आकर्षण होता है। यह वासना जो चित्तमें बसी है कि मैं इससे अधिक धनवान बन जाऊँ, वैभव सम्पन्न हो जाऊँ, इस वासनाके कारण यह जीव उन परपदार्थोंके पीछे खिचा-खिचा फिरता है। प्रथम तो यही बात देख लो कि जिससे बड़ा बननेकी चाह की जा रही है उससे बड़ा बनकर भी लाभ क्या लूट लिया जायगा ? दूसरे, वह वैभव भी तो पंकवत् है। जैसे पङ्क (कीचड़) में जितना बैठेंगे उतना ही फँसते जायेंगे। इसी तरह इस वैभवमें हम जितना अपना अधिकार मानेंगे उतना ही फंसते चले जायेंगे। अनादिसे लेकर अब तक इस जीवनें इस परिग्रहकी लालसा रखी अनेक प्रयत्न करने परभी इसे शान्ति न प्राप्त हो सकी वैभवसम्पन्न होना चाहते हैं टीक है, यह तो गौरव की बात है, दीन बनकर कहीं रहना चाहिये लेकिन ऐसा वैभवसम्पन्न क्यों नहीं बनना चाहते कि जिससे फिर कृतार्थ हों जायेंकि वह वैभव है ज्ञान। अच्छी तरहसे निर्णय करलो, हमारा ज्ञान यदि सावधान है तो हम हर परिस्थितियोंमें प्रसन्न हैं और यदि हमारा ज्ञान सावधान नहीं है तो कितने ही वैभवके बीच पड़े रहें पर शान्ति नामकी चीज नहीं प्राप्त हो सकती।

शान्तिकी साधना—शान्ति नाम वास्तवमें है किसका ? शान्ति है एक आकुलता रहित अवस्था। जिस जानकारीमें शान्ति होती है वैसी जानकारी बने यही शान्तिका उपाय है और जिस जानकारीमें आकुलता रहती है ऐसी जानकारी करना वह अशान्तिका उपाय है। अपने ज्ञानके परिणमनमें शान्ति और अशान्तिका फैसला है। जो लोग दुःखी हैं उनके आत्माका जरा अवलोकन तो करो यही बात मिलेगी कि वे अपने आपमें कुछ ख्याल बनाकर व्यर्थके विकल्प कर रहे हैं, जिन जीवोंसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं उनसे इष्ट अनिष्टकी कल्पना करके विकल्प बना रहे हैं। तो वहाँ ज्ञानकी ही एक ऐसी दशा बन गयी कि जिससे वे दुःखी हो रहे हैं। जो लोग सुखी शान्त हैं योगीजन, ज्ञानी पुरुष, उन्होंने ऐसी कौनसी चीज पा ली है, जिससे वे शान्त और प्रसन्न रहा करते हैं ? अपने ज्ञानका ही एक ऐसा परिणमन बना रहे हैं कि जिससे उनके परविषयक मूर्छाका विकल्प नहीं है। परसे मेरा हित है, दूसरा मेरा कुछ कर देगा, मैं दूसरेका कुछ कर दूंगा आदिक विकल्पोंसे रहित ज्ञानवृत्तिके प्रताप से वे प्रसन्न हैं। तो वैभव वास्तविक जीवका ज्ञान ही है और उस ज्ञानसे ही हम सब की सही व्यवस्था बनती है।

ज्ञानकी प्रत्यक्ष और परोक्षरूपता ज्ञान ही प्रमाण है। प्रत्येक आत्मामें ज्ञानस्वरूप है और उस ज्ञानस्वभावका क्या क्या परिणमन होता है, किस किस तरह से जानकारियाँ चलती हैं ऐसे ज्ञानके भेद बताये जा रहे हैं। ज्ञान दो तरहके होते है एक प्रत्यक्ष और एक परोक्ष। जो आत्मशक्तिसे इन्द्रिय मनकी सहायताके बिना स्पष्ट जाने उसे तो प्रत्यक्ष कहते हैं और जो इन्द्रिय मनकी सहायताके बिना स्पष्ट जाने उसे प्रत्यक्ष कहते हैं और जो इन्द्रिय मनकी सहायता लेकर जाने उसे परोक्ष कहते हैं। यह लक्षण सिद्धान्तकी दृष्टिसे है, न्याय दर्शनकी पद्धतिसे थोड़ा इतना और समझ लेना चाहिए कि जो इन्द्रिय और मनसे भी जो ज्ञान उत्पन्न होता हो, पर स्पष्टसा जँचता हो उसे भी दर्शन पद्धतिमें प्रत्यक्ष कहा गया है, किन्तु उसका नाम है सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष। जैसे लोग कहते हैं कि हमने प्रत्यक्ष आँखों देखा, तो आँखोंसे देखकर जो ज्ञान किया गया वह सैद्धान्तिक दृष्टिसे यद्यपि परोक्ष ही है, क्योंकि इन्द्रियके निमित्तसे वह ज्ञान है लेकिन कुछ स्पष्ट झलकता है इस कारण हम उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। लेकिन यह औपचारिक प्रत्यक्ष है। मुख्य प्रत्यक्ष तो वह है जो आत्म शक्तिसे पदार्थको स्पष्ट जाने। तो प्रत्यक्षके लक्षणमें जो दर्शन पद्धतिसे युक्त बैठे और सैद्धान्तिक पद्धतिसे भी युक्त बैठे' ऐसे प्रत्यक्षका लक्षण अब बतला रहे हैं।

प्रत्यक्षका लक्षण – 'विशदं प्रत्यक्षस्' – जो विशद ज्ञान है स्पष्ट ज्ञान है उसे विशद ज्ञान कहते हैं। जिस ज्ञानमें पदार्थ स्पष्ट आ रहे हों वह तो है प्रत्यक्ष और जिस ज्ञानमें पदार्थ स्पष्ट तो नहीं आते, किन्तु उसके सम्बंधमें बहुत कुछ ज्ञान हो रहा है उस ज्ञानको कहते हैं परोक्ष। देखिये एक प्रत्यक्ष होता है स्वानुभवप्रत्यक्ष। जैसे आँखें खोलकर पदार्थोंको देखते हैं तो यह बड़ा स्पष्ट मालूम होता है इसी प्रकार आँखे बन्द करके, अन्य इन्द्रिमका भी व्यापार बंद करके बाह्य पदार्थोंका विकल्प भी तोड़कर मनके द्वारा किसी परवस्तुको न जाने किन्तु अपने आपको यह मैं ज्ञानमात्र हूँ उस ज्ञानस्वरूपको अपने ज्ञानमें लेवें, केवल जाननमात्र एक चैतन्य प्रकाशमात्र केवल मैं ज्योतिस्वरूप हूँ इस प्रकारका उपभोग बनायें तो इस उपभोग बनाये हुएकी स्थिति में इस आत्माको ज्ञानानुभव होता है, आत्मानुभव होता है, और ज्ञानके रूपसे यह आत्मा ज्ञानमें प्रत्यक्ष भासता है। और, जेसे लोग सामने पड़ी हुई चीजको यह यह कहकर बोलते हैं इसी प्रकार ये ज्ञानी योगी स्वानुभवी पुरुष भी इस आत्माको यह यह करके देखते हैं। यह है आत्मा। यह हूँ। मैं जानते हैं ज्ञानस्वरूपमें अपने आपको और बल्कि यह स्वाधीन प्रत्यक्ष है। इस प्रकार वे स्पष्ट समझते हैं। तो स्वानुभाव भी प्रत्यक्ष माना गया है जितने समय आत्माको आत्माका अनुभव होता है। केवल ज्ञान का ज्ञानमें अनुभव होता जब इसकी स्थिति होती है अर्थात् यह ज्ञानानुभूति स्पष्ट मात्र ज्ञानके रूपमें जब प्रगट होती है उस समय न इन्द्रियां कुछ काम कर रही हैं और न मन कुछ काम कर रहा है। तो इन्द्रिय और मनका कुछ प्रयोग हो अथवा न हो, जिस पदार्थको स्पष्ट जाना जा रहा हो उस ज्ञानको प्रत्यक्ष कहते हैं।

प्रत्यक्षज्ञानकी अनुमानप्रयोगसे सिद्धि – अब प्रत्यक्षके लक्षणके समर्थनमें एक अनुमान बनाया जा रहा है कि प्रत्यक्ष विशदज्ञानस्वरूप होता है क्योंकि प्रत्यक्ष पना होनेसे जो विशद ज्ञानरूप नहीं होता, वह प्रत्यक्ष नहीं होता। जैसे अनुमानसे धुवां देखकर जान लिया कि इसमें अग्नि है तो अग्निका ज्ञान तो हो रहा है। अग्नि न होती यह धुवां कैसे होता। तो धुवेंको देखकर अग्निका जो ज्ञान किया वह यथार्थ है, गलत नहीं है लेकिन अग्निका प्रत्यक्षज्ञान तो नहीं हो रहा, स्पष्ट ज्ञान तो नहीं हो रहा और आँखोंसे अग्नि दिख जाय तो वह स्पष्ट ज्ञान कहलाता है। तो स्पष्ट ज्ञान नहीं है अनुमान वाला ज्ञान, वह परोक्ष कहलाता है, और जितने स्पष्ट ज्ञान हैं वे सब प्रत्यक्ष कहलाते हैं।

आत्मप्रत्यक्षतामें लाभ— भैया ! प्रत्यक्ष तो हैं ये सब लेकिन यह चिन्तन कीजिए कि इन इन्द्रियों द्वारा हम पदार्थोंको स्पष्ट सा भी ज्ञान करके लाभ क्या उठा पायेंगे एक अपने आपके स्वरूपको यदि हम स्पष्ट जान लें, अनुभव करलें तो इस अनुभवसे हम अपना लाभ उठा लेंगे। लाभ क्या है ? अशान्ति नहीं रहती यह सर्वोत्कृष्ट लाभ है। जहाँ अपनेको सबसे निराला ज्ञानमात्र अनुभव किया वहाँ अशान्ति ठहर नहीं सकती। जहां अपनी सुध भूलकर दूसरोंसे होड़ मचाने लगते हैं वहां अशान्ति उत्पन्न हो जाती है। बड़ी विकट समस्या है यह। और कुछ भी बड़ी समस्या नहीं है। मात्र इतनी सी बात है कि इन चर्म चक्षुवोंको खोलकर बाहरमें कुछ निरखा, बाहरमें कुछ अपना निर्णय बनाया बस वहाँ अशान्ति होती है और इन चर्मचक्षुवोंको बन्द करके विशुद्ध ज्ञान नेत्रके द्वारा अपने स्वरूपको देखो और उसे ही निरखनेमें संतोष मानो, तृप्ति मानो कि बस शान्ति ही शान्ति है। किन्तु इस प्रकार शान्तिके मार्गमें चलने वाले पुरुषको लोग मूढ़ कहेंगे। लेकिन यह तो बतावो कि बाह्यपदार्थोंमें सुधार बिगाड़ करनेका विकल्प करके, बड़े बड़े महल खड़े करके, बड़ा वैभव बढ़ा करके जो कुछ एक बलप्रयोग किया है मोहकी दृष्टिमें, उस समय भी व भविष्यमें भी बलप्रयोगके बावजूद आप अपनेमें लाभ क्या पा लेंगे ? उस पुरुषार्थसे, उस परिश्रमसे जीवको लाभ क्या होगा ? और यदि अपने आपमें अपने आपका दर्शन करके अपनेमें मग्न होनेका पुरुषार्थ किया तो उससे लाभ क्या होगा ? सदाके लिये सङ्कटोंसे छूट जायगा।

निर्वाणसे स्वपरलाभ— और देखो, आजके हिसाबसे कोई मुक्त हो जायगा तो तुम्हारे यहाँ जो अन्नसङ्कटकी समस्या है या वैभवपर झगड़े हैं उससे अलग हो जायगा और यहीं सारा वैभव छोड़ जायगा। जो जीव मुक्त होता है उसने एक लोक दृष्टिसे यह भी तो उपकार किया कि सब वैभवको छोड़कर अकेला ही लोकके शिखर पर विराजमान होगा, यह भी एक लोककी दृष्टिसे उपकार है। जैसे कोई पुरुष घरमें सम्पन्न होकर घरका परित्याग करदे, वैभवका परित्याग करदे तो वह वैभव दूसरेके

काम आया। अब खूब भोगें संसारी लोग वैभवको, यह मैं तो संसारसे मुक्त होकर अलग पहुंच गया हूँ और जो पुरुष ऐसे अपने आपमें शान्ति प्राप्त करते हैं उन पुरुषोंकी सङ्गतिसे, उन पुरुषोंके उपदेशसे, भगवानकी दिव्य ध्वनिसे अनेक जीव सन्मार्ग व शान्ति प्राप्त करते हैं। तो यह मोक्षमार्गका पुरुषार्थ यह कायरता है या यह परम पुरुषार्थ है ? खुद भी सदाके लिए समस्त झंझटोंसे दूर होता है और जन्म-मरण बुढ़ापा आदिक समस्त दोषोंसे मुक्त हो जाता है। तो यह एक अलौकिक पुरुषार्थ है, इसको भूलना न चाहिए।

मोहनिद्राके स्वप्नोंकी विडम्बना जो पुरुष बाहरी ठाट-बाट, इज्जत-प्रतिष्ठाकी चाह करके बड़े-बड़े पुरुषार्थ करते हैं, वह कोई भली बात है क्या ? कुछ लोगोंने प्रशंसाके कुछ शब्द बोल दिये तो उससे इस आत्माको लाभ क्या हो गया ? जैसे स्वप्नमें बड़ी सभा लगी है, लोग प्रशंसा कर रहे हैं, राजपद सौंप रहे हैं, ऐसा कुछ स्वप्न घसियारा भी देख ले तो घसियारा तो घसियारा ही है, वह तो एक स्वप्न की बात देख रहा है। इसी तरह यह मोहकी नींद बड़ी विकट नींद है, मोह नींदका स्वप्न भी बड़ा विकट स्वप्न है। जैसे स्वप्नमें जो कुछ दीखा सब सत्य मालूम होता है, झूठ नहीं मालूम होता है, यह देखो नदी, यही तो है पर्वत, यही तो है जङ्गल, यों सब सत्य मालूम होता है इसी तरह मोहकी नींदमें भी ये सब बातें सत्य मालूम होती यही तो है मेरा वैभव यही तो हमारा महल, यही तो हैं हमारे परिजन मित्रजन ! यही तो मैं अधिकारी हूँ, मिनिष्टर हूँ, इस प्रकार इस मोहकी नींदमें जो कुछ भी देखा जा रहा है यह सब सत्य लग रहा है, यद्यपि वह है सब असत्य, पर मोहकी नींद में असत्य नहीं मालूम पड़ रहा है। असत्य यों है कि ये सब पौद्गलिक परिणमन हैं, ये परिणमन एकरूप कभी नहीं रह पाते, बदलते रहते हैं। जो बात आज है वह थोड़े समय बाद नही रहती। इसलिए यह असत्य है। इस असत्य मायामय वैभवके प्रति यह मोही मानव इसे सत्य समझकर इसकी ओर ही खिंचता रहता है, आत्महितकी बात नहीं सोचता।

आत्महितार्थीकी भगवद्भक्ति- जिसे आत्महितकी धुनि लग जाय उसे तो भगवद्भक्ति ही सुहायेगी, जिसे आत्तहितकी धुन नहीं है वह मन्दिरमें जाकर भी अपने को सूना ही पाता है। क्या मिलता है मन्दिरमें ? ठीक है, जिसे अपने आपमें कुछ बात नहीं प्राप्त हो सकी, जिसे अपने स्वरूपका पता नहीं हो सका उसे मन्दिरमें भी कुछ मिल नहीं पाता है, तो वह निराशा होकर यह आशङ्का करता है कि मन्दिरमें जानेसे लाभ क्या है ? और, फिर कभी कभी तो लोग ऐसा भी प्रश्न कर देते कि मन्दिरमें गए, अनेक स्त्री पुरुष वहाँ मिलते रहते ही है तो उनकी ओर चित्त जाता है और विकल्प बढ़ते हैं, तो फिर मन्दिर जानेसे क्या लाभ ? तो उनका यह प्रश्न उनकी दृष्टिसे सही है जब आनन्द निधान निज ज्ञायकस्वरूप परिचयमें नहीं है तो फिर कहाँ

उपयोग जमाया जाय ? इसको कहीं स्थिरता मिले तब आनन्दकी प्राप्ति हो, कहीं इसे न आनन्द प्राप्त होता है न स्थिरता मिलती है, ऐसी स्थितिमें बाहरी पदार्थोंकी ओर इसका चित्त चलता है, तो मन्दिरमें जो भी स्त्री पुरुष मिले उनकी दृष्टि रखकर अपने विकल्प बनाता है, तो यह मन्दिरका दोष नहीं है, यह उपादानका दोष है, जो वहाँ विकारभाव करता है उसका दोष है, और जगह भी तो वह विकारी बनता रहता है, तो अपने आत्माकी सुधि आये बिना भगवानकी भक्ति वास्तबमें हो नहीं सकती, जिसको आत्महितकी धुन है वही भगवानकी भक्तिमें अपनी दृढ़ता रख सकता है, उसे ही अरहंतका स्वरूप, सिद्धका स्वरूप सुहाता है धन्य है परिणमन, धन्य है यह विशुद्ध ज्ञान जिसमें मात्र जानकारी है, रागद्वेषका सम्बन्ध नहीं है, धन्य है यह वीतराग अवस्था जिसके कारण ये उत्कृष्ट हो गए हैं। अब इनको दुनियामें कुछ करनेको नहीं रह गया है, जो करने लायक काम है उसे ये कर चुके हैं कृतार्थ हो गए हैं । तो अपने आपके ज्ञानस्वभावकी ओर हमें दृष्टि देना चाहिए और कुछ इस चर्चामें अपना उपयोग लगना चाहिए कि मैं क्या हूँ, मेरा क्या वैभव है, मेरी क्या कला है, किस तरह ये सब चमत्कार चल रहे हैं। चमत्कार सब कुछ हमारा हममें ही चल रहा है, बाहरी पदार्थों को नहीं चलता, लेकिन इसकी ओर दृष्टि दें तो समझमें आये।

प्रत्यक्ष ज्ञानके प्रकार— मेरास्वरूप ज्ञान है और वह ज्ञान प्रत्यक्ष, परोक्ष इन दो प्रकारोंमें बँटा हुआ है जो विशद ज्ञान है उसे तो प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं, जो अस्पष्ट ज्ञान है उसको परोक्ष ज्ञान कहते हैं। पहिले सिद्धान्तकी दृष्टिसे ज्ञानके फैलाव को देखिये ! ज्ञान दो प्रकारके हैं —प्रत्यक्ष और परोक्ष । प्रत्यक्ष दो प्रकारका है— सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष तो इन इन्द्रियोंसे जो सीधा जाना जा रहा वह है और पारमार्थिक प्रत्यक्ष जो आत्मीयशक्तिसे ही जाना जाता है वह है। पारमार्थिक प्रत्यक्षके दो भेद हैं विकलप्रत्यक्ष और सकलप्रत्यक्ष। विकल अर्थात् अपूर्ण पारमार्थिक दो प्रकार के हैं अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान। अवधिज्ञान कहते हैं उसे जो आत्मीयशक्तिसे भूतभविष्यके रूपी पदार्थोंको, दूरवर्ती पदार्थोंको स्पष्ट जाने और दूसरेके मनके व्यापारों को विकल्पोंको, विचारोंको जो स्पष्ट जान जाय उसे मन:पर्यय ज्ञान कहते हैं। सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष केवल ज्ञान है जो वास्तविक और निरपेक्ष स्वतंत्र परिपूर्ण है जिसके द्वारा केवलज्ञानी समस्त लोकालोकको भूत, भविष्य वर्तमानके समस्त पदार्थों को स्पष्ट जानता रहता है।

परोक्षज्ञानके प्रकार परोक्षज्ञानकी स्मृति प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगममें ५ भेद होते हैं किसी चीजका हम स्मरण करते हैं तो बतलावो वह चीज स्पष्ट सामने तो नहीं है उसका ख्याल आ रहा है, तो ख्यालमें जो ज्ञान बना उन दोनों ज्ञानोंमें अन्तर है। तो स्मृतिका ज्ञान परोक्षज्ञान है प्रत्यभिज्ञान सामनेकी चीजको देखकर किसी दूसरेका ख्याल करके उन दोनोंमें तुलना करे वह प्रत्यभिज्ञान है। यह

तो परोक्षज्ञान है, स्पष्ट नहीं हो रहा है। इसी प्रकार तर्क करना, जहाँ जहाँ धुवाँ होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है यह भी परोक्षज्ञान है, इसमें कोई चीज स्पष्ट तो नजर नहीं आयी। तो जिसमें स्पष्ट नजर न आये ऐसा जो ज्ञान है वह परोक्षज्ञान कहलाता है। शब्द सुनकर अर्थ जान लेना, पदार्थका बोध होना भी परोक्षज्ञान है।

साधनज ज्ञान एवं व्याप्तिज्ञानकी परोक्षरूपताकी मीमांसा—कुछ लोग अकस्मात् धुवां देखकर यह जान जावें कि यहां अग्नि है, इसको भी प्रत्यक्ष बतलाते और तर्कज्ञानको जिसमें कि व्याप्ति बनायी जाती, जो कुछ भी भाव होता है, जितने भी पदार्थ हैं वे सब क्षणिक हैं, जितने भी धुवां वाले प्रदेश हैं वे सब अग्निवान हुआ करते हैं आदिक जो तर्क है, व्याप्तिज्ञान है जो कि परोक्ष है, कुछ लोग इसे भी प्रत्यक्ष बतलाते हैं। लेकिन यह प्रत्यक्ष नहीं है, यह ज्ञान भी प्रत्यक्ष माना जाने लगे तो अनुमान भी प्रत्यक्ष बन जायगा, फिर तो एक प्रत्यक्ष ही प्रमाण रह गया। जो अस्पष्ट ज्ञान है वह तो परोक्ष कहलाता है और जो स्पष्ट ज्ञान है उसे प्रत्यक्ष कहते है।

असीम विशद केवलज्ञानकी लब्धिका उपाय आत्मकैवल्यका अनुभव देखिये ! परोक्षज्ञानकी अपेक्षा स्पष्ट ज्ञानमें निर्मलता विशेष है और इन स्पष्टज्ञानोंमें भी सांव्यवहारिक प्रत्यक्षकी अपेक्षा अवधिज्ञान मन:पर्ययज्ञानमें निर्मलता विशेष है और इससे भी अधिक या परिपूर्ण निर्मलता केवलज्ञानमें है क्योंकि केवलज्ञानको प्राप्त करनेका हमारे पास जो तरीका है वह भी एक प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है। उसमें भी निर्मलता अधिक है। केवलज्ञान कैसे प्राप्त हो ? तो जरा शब्दोंके मेलसे और युक्ति से भी निरखिये ! केवलज्ञान—केवल मायने सिर्फ, मात्र ज्ञान ज्ञान रह गया उसका नाम केवलज्ञान है। तो हम अभीसे ही अपने उस केवल मात्र ज्ञानके ज्ञानको ही देखनेका अभ्यास बनायें तो इस अभ्यासके बलसे केवलज्ञान प्रकट होगा अर्थात् अपने उस कैवल्यकी श्रद्धा करें। मैं केवल ज्ञानस्वरूप हूँ। ज्ञानमात्र अपने आपको अनुभवमें लें इसे कहते हैं स्वानुभव प्रत्यक्ष। तो इस स्वानुभव प्रत्यक्षके बलसे केवलज्ञान प्रत्यक्ष की उत्पत्ति होगी अर्थात् समस्त वैभव है केवलज्ञानमें, सर्वज्ञदेवमें, परमात्मपदवीमें और उस परमात्मपदवीकी प्राप्तिका साधन है आत्मानुभव। मैं केवल ज्ञानस्वरूप हूँ, इस प्रकारका आत्माका अनुभव बने तो उस समस्त वैभवकी प्राप्ति होती है। तो हम अनेकानेक पुरुषार्थ करके आत्मज्ञानकी प्राप्ति करें इसमें ही हम आपका हित है।

न्यायविषयमें युक्तियोंका बल—यह न्यायविषयका ग्रन्थ है। इस ग्रन्थमें श्रद्धाके बलपर किसी तत्त्वकी मान्यताको प्रमाण नहीं माना है। जैसे सिद्धान्तशास्त्रोंमें करणानुयोगके ग्रन्थोंमें लिखा है स्वर्ग नरक आदिक, स्वर्गलोककी रचना जैसे बतायी है वैसे हम श्रद्धासे मान लेते हैं। जिन वीतराग प्रभुने सप्त तत्त्वोंका जो प्रतिपादन किया, जब उनमें अनुभवसे हम सही उनकी बात उतारते हैं तो यह श्रद्धा होती है कि जिन प्रभुके प्रणीत तत्त्वका स्वरूप निर्विवाद है उनकी सारी वाणी निर्विवाद है उन

की श्रद्धापर हम सब बातें मान लेते हैं किन्तु न्यायशास्त्रमें श्रद्धाके कारण किसी बात को मान लेनेकी गुन्जाइश नहीं है। किसी तत्त्वको हम श्रद्धासे मान रहे हैं, हम ही तो मान रहे हैं, दूसरोंको हम कैसे मना सकते हैं। दूसरा कोई अपनी श्रद्धासे कुछ मान रहा है तो वह ही तो मान रहा है, उसे हम कैसे मना सकते है ? तो न्यायग्रंथमें युक्तियोंकी प्रधानता है, जो युक्तिसे, तर्कसे सही बैठे वह बात प्रमाण है और जो बात युक्तिमें न बैठे, खण्डित हो जाय वह अप्रमाण है।

अपना ही प्रकरण अपनी ही बात इस प्रकरणमें अपने स्वरूपका विस्तार ही बताया जा रहा है। हैं तो हम आप भी प्रभुवत्, विशदसकलज्ञानस्वरूप, किन्तु अपनी सुधसे पृथक् होनेसे यह अन्तर हो गया है। यहाँ जो कुछ भी कहा जायगा वह युक्तियोंसे शुद्ध हो तब तो सही है। केवल इस मान्यतासे कि हमारे धर्ममें यह बताया है इसलिए सही है इसकी यहाँ प्रतिष्ठा नहीं है, इसी कारण यह विषय कुछ थोड़ासा क्लिष्ट भी हो जाता है। लेकिन जिस ज्ञानमें बड़े बड़े विवादोंका, व्यापारोंका, हिसाबोंका निबटारा करनेकी सामर्थ्य है वह ज्ञान क्या इस वस्तुके स्वरूपको नहीं जान सकता ? अपना उपयोग निर्मल हो, यहाँ वहाँके राग न सता रहे हों, ध्यान पूर्वक सुना जाय तो यह सब विषय भी बुद्धिगत हो जाता है। यहाँ चर्चा चल रही है ज्ञानकी। ज्ञान दो प्रकारके होते हैं---एक प्रत्यक्ष और एक परोक्ष। प्रत्यक्ष ज्ञान वह है जो स्पष्ट विदित होता है और परोक्ष ज्ञान वह है जो अस्पष्ट समझमें आता है।

मतिज्ञानकी पर्यायोंका विवरण---लक्षणके आधारपर अभी विशदज्ञान आदिककी चर्चा न रखें, केवल एक मतिज्ञानकी ही चर्चा रखें और उसमें इनका विभाजन करें। तत्त्वार्थसूत्रमें बताया है--"मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्।" ये भी मतिज्ञानकी ही पर्यायें हैं। मति—यहां मतिका अर्थ मतिज्ञान से नहीं है, किन्तु सांव्यवहारिक प्रत्यक्षसे है। इन्द्रियोंसे जो जाना जा रहा है उस ज्ञानका नाम है मति। स्मृति जो पूर्वमें जानी हुई चीजका स्मरण होता है उस स्मरण का नाम है स्मृति। संज्ञा संज्ञाका दूसरा नाम है प्रत्यभिज्ञान। सामने प्रत्यक्ष नजर आयी हुई चीजमें और स्मरणकी हुई चीजमें जो समानता, एकता या विलक्षणता या अनेक प्रकारकी प्रतियोगता जानना प्रत्यभिज्ञान हैं। तर्क व्याप्तिका ज्ञान बना कि जहां अमुक चीज नहीं होती वहाँ यह भी नहीं होती। इस प्रकारका अविनाभाव सम्बन्ध बनाना सो तर्कज्ञान है। और अनुमान—साधनको देखकर साध्यका ज्ञान करना अनुमानज्ञान है। ये मतिज्ञानकी ही पर्यायें हैं—स्मृति, संज्ञा, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान। इनमें केवल मति तो प्रत्यक्ष माना गया है और वह है सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष। शेषके स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, अनुमान और तर्क ये परोक्षज्ञान माने गये हैं। सो आप खुद जान लें कि आँखोंसे देखी और कानोंसे सुनी बात कितनी स्पष्ट विदित होती है। हम बोल रहे हैं, आप सुन रहे हैं, तो जो बोल रहे हैं उसमें कुछ सन्देह भी

है क्या ? जैसे अनुमानमें कोई बात आयी, किसी पदार्थका बोध हुआ तो उसमें संदेह जरा जल्दी हो जाता है पर सुनी हुई बातमें व आँखों देखी बातमें किसीको सन्देह तो नहीं होता, वह तो स्पष्ट ज्ञानमें आता है। यह तो स्पष्ट है पर स्मरणमें आया, अनुमानमें आया, युक्तिसे जहां व्याप्ति बनायी जाय वह सब अस्पष्ट बोध है, देखे हुए पदार्थकी तरह स्पष्ट ज्ञान नहीं है, इस कारण वह सब परोक्ष है।

संक्षेपमें साधनसे साध्यके ज्ञानमें प्रत्यक्षत्वकी मान्यता—यहाँ क्षणिकवादी जन अपना यह मंतव्य रख रहे हैं कि कहीं धुवां देखकर अग्नि जान ली तो वह भी प्रत्यक्ष है अनुमान नहीं है, जब यह दृष्टान्त बनाया जाय कि जहां जहां धुवाँ होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है, धुयाँ यहां है इसलिए अग्नि भी होना चाहिए। यहां धुवां है तो अग्नि होना ही चाहिए जैसे रसोईघर है। इस प्रकार रूपक बनाया तो वह अनुमान कहलायेगा ! अगर अकस्मात् कहीं धुवां दिखे और तुरन्त जान गए कि यहां आग है ! तो वे इसे प्रत्यक्ष मानते हैं। थोड़े शब्दोंमें यों समझलो कि दृष्टांत देकर जो अनुमान बनाया जाय वह तो हैं उनका अनुमान और दृष्टान्त न देकर यदि केवल सीधा ही कुछ साधन देखकर साध्यका ज्ञान हो जाय उसे वे प्रत्यक्ष कहते हैं। लेकिन धुवां देखकर जो आगका ज्ञान हुआ वह स्पष्ट तो नहीं हुआ। जैसे आंखोंसे देखकर आगको हम स्पष्ट जानते हैं इस तरह स्पष्ट बोध नहीं होता। किन्तु उनका मंतव्य है कि अकस्मात् धूम देखनेसे यहां अग्नि है ऐसा जो ज्ञान है वह प्रत्यक्षज्ञान है।

साध्यविज्ञानमें सामान्यविषयत्वकी असङ्गतता—अकस्मात् धूम देखनेसे होने वाले अग्निके ज्ञानको प्रत्यक्ष माना जानेपर उनसे पूछा जा रहा है कि अकस्मात् धूम देखकर यहां आग है, ऐसा जो ज्ञान हुआ, इस ज्ञानमें जो कुछ प्रतिभासमें आया, क्या आया ? आग ! तो उस सम्बन्धमें जो कुछ भी प्रतिभासमें आया वह सामान्य प्रतिभासमें आया या विशेष ? सामान्य प्रतिभास तो युक्त नहीं बैठता। क्योंकि यदि सामान्य ही प्रतिभासमें आया हो तो वह प्रत्यक्ष न कहलायेगा। बौद्ध लोग विशेष ज्ञानको तो प्रत्यक्ष और सामान्य ज्ञानको अनुमान कहते हैं। और भी बात देखो कि जिस विशेषका ज्ञान उनके यहां प्रत्यक्ष माना गया है वह है निर्विकल्प और जहाँ विकल्प उठें वह बन गया सामान्य। जब कि साधारणतया सभी लोग जानते हैं कि विकल्प सामान्यमें नहीं उठा करते, विकल्प विशेषमें उठा करते हैं लेकिन उनका विशेष निर्विकल्प हुआ करता है और विकल्प उठे उसे सामान्य कहते हैं।

क्षणक्षयवादियोंके अभिमत सामान्यविशेषकी व्यवस्थाका कारण—निर्विकल्पको विशेष व सविकल्पको सामान्य माननेका कारण क्या है ? उनका मुख्य सिद्धान्त है कि प्रत्येक पदार्थ क्षण-क्षणमें नष्ट होता है। अभी कोई पदार्थ है, तो एक क्षण बाद दूसरा पदार्थ हो गया, ऐसा वे मानते हैं। जैसा जैनशासन पर्यायका

स्वरूप मानता है कि कोई सी भी पर्याय हो वह एक समयको हुई और दूसरे समयमें वह पर्याय नहीं रहती, नवीन पर्याय हो जाती है, इसी तरह वे पदार्थको ही नवीन मानते हैं। ऐसा माननेपर एक शङ्का होती है कि हमने तो जिन मनुष्योंको कल देखा था वे ही सब तो आज भी बैठे हुए हैं, और तुम कहते हो कि क्षण क्षणमें नये नये आत्मा होते हैं, नये नये पदार्थ होते हैं। तो क्षणक्षयवादियोंका उनके प्रति यह उत्तर होता है कि तुम्हें लग रहा है ऐसा कि यह वही आत्मा है वही पदार्थ है जो कल देखा था, पर यह तुम्हारी कल्पना है, तुम्हारा यह विकल्प है। तो यह सामान्य ज्ञान हुआ ना कि जो कल था सो आज है। इस प्रकार जो अनेक समयोंमें रहे, त्रिकालवर्ती रहे उसे ही तो सामान्य कहते हैं। तो पदार्थमें जो शाश्वत रहनेका बोध होता है वह कल्पनामे होता है, विकल्पसे होता है। विकल्प मिट जायें तो यथार्थ तत्त्व जो विशेष है वह ही ज्ञानमें रहे, जो कि निर्विकल्प है, ऐसा क्षणक्षयवादियोंका मन्तव्य है और इस आधारपर अनुमान तो सामान्यको विषय करता है और प्रत्यक्ष विशेषको विषय करता है। तो जिस ज्ञानमें अकस्मात् धूम देखकर जो बोध होता है कि यहां आग है तो इसमें क्या सामान्य प्रतिभासमें आ रहा ? अगर सामान्य प्रतिभासमें आ रहा तो वह अनुमान कहलायेगा ! प्रत्यक्ष कैसे कहते हो ? क्योंकि प्रत्यक्षका विषय सामान्य नहीं माना गया है। अगर प्रत्यक्षका विषय सामान्य भी मान लोगे तो प्रत्यक्षने ही विशेषको जाना, प्रत्यक्षने ही सामान्यको जाना, तब एक ही प्रमाण रह गया, फिर अनुमानककी कोई आवश्यकता ही नहीं रही।

साध्यविज्ञानमें विशेषविषयत्वकी असङ्गतता—अगर कहो कि उस ज्ञानको हमने विशेष ही जाना, अकस्मात् धूम देखकर यहां आग है, इस ज्ञानमें विशेष ही जाना गया तो विशेष जाने गयेमें तो विशेष जाननेपर फिर सन्देह तो नहीं होता, फिर वहां आगे जाननेका यह सन्देह क्यों होता कि वह आग तृणकी है या पत्तोंकी है, हाँ धुवाँ खूब हो रहा है तो यह कुछ कुछ अंदाज हो जाता है कि यहाँ तो तृण–पत्ते जल रहे हैं क्योंकि उसमें अधिक धुवां होता है। तो अग्निका यदि विशेष प्रत्यक्ष होता है तो उसमें यह सन्देह न होना चाहिए कि यह किस चीजकी आग है ? जैसे सामने जलने वाली आगमें यह सन्देह तो नहीं होता कि यह किस चीजकी आग है ? वैसा निःसन्देह ज्ञान होना चाहिए ! यदि सन्देह हो तो शब्द और लिङ्गसे भी जो जान रहे हैं उसमें भी सन्देह होने लगे, किन्तु शब्द और लिगसे जाने गयेमें आपने सन्देह नहीं माना। इस कारण यह ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं है। साधन देखकर जल्दी ही साध्यका ज्ञान हो जाय तो वह प्रत्यक्ष नहीं है, अनुमान ही है वह, क्योंकि साधनसे उसकी उत्पत्ति हुई। दृष्टान्त देकर भी साधनसे साध्यका ज्ञान हो तो वह अनुमान है और दृष्टान्त दिये विना भी यदि साधनसे साध्यका ज्ञान हो तो वह भी अनुमान है।

वर्त रहे ज्ञानोंका विवरण—यहाँ प्रत्यक्ष और परोक्षकी चर्चामें यह बताया

गया है कि जो स्पष्ट ज्ञान हो वह तो कहलाता है प्रत्यक्ष और जो अस्पष्ट ज्ञान है वह कहलाता है परोक्ष । जानते हम आप सब हैं, जो कुछ नहीं समझते वे भी सब समझते । जैसे बड़े बड़े धुरंधर पण्डित प्रत्यक्ष और अनुमानकी बात जानते हैं इसी तरह मूर्ख भी प्रत्यक्ष और अनुमानसे ज्ञान करते हैं, पर मूर्खोंको यह पता नहीं होता कि यह ज्ञान किस किस्मका है, इसका स्वरूप क्या है, पर पण्डित लोग उसका स्वरूप जानते हैं। जो ज्ञानका स्वरूप जानते है वे ज्ञानका अनुभव करनेके पात्र हैं, जो ज्ञानके स्वरूपको ही नहीं जानते वे अनुभव ही क्या करें ।

विशिष्ट बोधकी कार्यकारिता— देखिये प्रयोजनभूत बात तो इतनी है कि इतना ही ज्ञान प्रयोजन सिद्ध कर देता है कि हम अपने ज्ञानस्वरूपका ज्ञान करें। ज्ञानका अनुभव बनावें ठीक है, पर इस ज्ञानके बारेमें जितना विस्तृत ज्ञान बने उतना ही स्पष्ट ज्ञानका अनुभव होगा । जैसे कोई पुरुष किसी लड़केको जोड़ सिखा दे कि ये ये संख्यायें हैं और यह योग हुआ, वह बालक इतने तक ही जानता है और कोई दूसरा बालक बाकी, गुणा, भाग आदि सब कुछ जानता है, तो वह बालक उस हिसाब के सन्बन्धमें बहुत सी बातें जानता है, उसको जोड़ सम्बन्धी अधिक स्पष्ट ज्ञान है, बल्कि यों कहो कि उसे उसका अधिकारपूर्ण ज्ञान है, किसी भी कार्यको करते हुए उस कार्य सम्बन्धित अनेक बातोंका ज्ञान है तो उसके लिए वह कार्य ज्ञान बहुत स्पष्ट ज्ञान है, और जितना कार्य करना है कराना है मात्र उतना ही ज्ञान हो तो उसमें इतना बल नहीं होता है । तो जब ज्ञानके स्वरूपका अनुभव करना एक आवश्यक चीज है तो हम उस ज्ञानके वारेमें बहुत–बहुत कुछ बातें समझलें तो यह हमारे गुणके लिए है, कोई फाल्तु बात नहीं है, काममें तो बात आखिर उतनी ही आयगी कि समस्त पदार्थोंसे परभावोंसे निराला यह एक ज्ञानस्वरूप है और इसका मूल भी यह सहज ज्ञानस्वभाव हैं, जो सब ज्ञानोंमें रहा करे । सो जो ज्ञान है ज्ञान है, इस प्रकार सामान्य अनुवृत्ति को बनाये हुए है वह है ज्ञानस्वभाव, तो सहज ज्ञानस्वभावका अनुभव हमें करना है, किन्तु इतना कहने मात्रसे हमें वह ज्ञानस्वभाव वह हमारा स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाता है, हम उस ज्ञानके बारेमें बहुत–बहुत विशेषतावों समझ लें, समझ लेनेके बाद जब हमारा उसपर जाननेका अधिकार ठीक हो जायगा तो हम समस्त विकल्पोंसे हटकर केवल एक निर्विकल्प ज्ञानस्वभावमें दृष्टि रखें । तो इस प्रकरणमें ज्ञानके भेदोंकी बात चल रही है ।

तर्कप्रमाणकी परोक्षरूपता— अनुमान ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं है किन्तु परोक्ष है. इसी प्रकार एक तर्कज्ञान होता है जिसके आधारपर वकालत चलती है । व्याप्तिका ज्ञान करने वाला तर्कज्ञान भी परोक्षज्ञान है । जहाँ तर्कज्ञानका सहारा नहीं है वहां युक्ति थोथी है और वह युक्ति कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है ? किन्तु जहाँ अन्यथा-नुपपत्तिसे तर्क पुष्ट होता है वह समर्थ ज्ञान है जैसे अनुमानमें यह व्याप्ति लायी गयी

थी कि यदि अग्नि न होती तो धुवां न हो सकता था। चूँकि धुवां है इसलिये अग्नि नियमसे है। उस अनुमानमें वह संदेह तो नहीं करता क्योंकि व्याप्तिका ज्ञान उसके प्रबल होता है इस व्याप्तिको निरंश अंशवादी लोग प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं। लेकिन समस्त व्यवहारी जनोंसे पूछ लीजिए कि इस प्रकार उस व्याप्तिका जो ज्ञान बना है उस ज्ञानमें आग सामने आ गयी या हाथपर आ गयी, या धुवाँ आ गया ? न धुवांका स्पष्ट बोध है न आगका स्पष्ट बोध है किन्तु युक्तिमें उसका अविनाभाव बनाया जा रहा है। प्रमाणकी परीक्षावोंमें व्यवहार भी देखा जाता है, व्यवहारके द्वारा प्रमाण की प्रमाणता समझी जाती है।

क्षणक्षयवादियोंका व्याप्तिज्ञानके विषयमें मन्तव्य—क्षणक्षयवादियों का मन्तव्य यह था कि पदार्थोंको देखकर हम झट यह ज्ञान कर लेते हैं कि ये सब क्षणिक हैं अर्थात् यह ज्ञान हमारा अनुमान नहीं है किन्तु प्रत्यक्ष है। अरे पदार्थ क्षण भर ही रहता है और नष्ट हो जाता है यह क्या तुम्हें प्रत्यक्ष दिख रहा है ? अनुमानसे जाना जाता है कि चूँकि ये सब पदार्थ बनते हैं तो जो बनाये गए पदार्थ हैं वे नष्ट हो जाया करते हैं तो यह कार्य भी बना है अतएव यह भी क्षणिक है। तो कृतक हेतु देकर, चूँकि यह किया गया है, अतएव, यह पदार्थ विनाशील है ऐसा अनुमान बनाया जाता है किन्तु इनके मन्तव्यमें कृतक है ऐसा जानकर यह क्षणिक है ऐसा जान बना प्रत्यक्ष है। जब तक दृष्टान्त न दिया जाय, जब तक बातको लम्बी न बनाकर कहा जाय, जैसा कि अनुमानमें किया जाता है तब तक वे उसे अनुमान नहीं मान सकते। तो यहां साधनसे साध्यका एकदम ज्ञान होना उनका प्रत्यक्ष है।

व्याप्ति ज्ञानको प्रत्यक्ष माननेपर आपत्ति—देखिये ! उन दोनोंके बारेमें युक्ति लेना कि जो क्षणिक नहीं होता वह कृतक भी नहीं होता या जो कृतक होता वह क्षणिक हुआ करता है, किसी भी प्रकारकी व्याप्ति बनाना यह व्याप्ति सही तो नहीं है कि जो क्षणिक नहीं होते वे कृतक नहीं होते अच्छा तो उदाहरण देकर बताओ अनेक चीजें ऐसी हैं जो किसीने बनायी नहीं है और नष्ट होती रहती है। खैर कोई सी भी व्याप्ति हो, पर व्याप्तिका ज्ञान अस्पष्ट हुआ करता है, ऐसी व्याप्तिका ज्ञान भी यदि स्पष्ट माना जाता है, प्रत्यक्ष माना जाता है तो फिर अनुमानके लिये कौनसा विषय रह गया कि उसे अलगसे मानते हो ? सारे व्याप्य सारे व्यापक प्रत्यक्ष बनते हैं इस ही कारण जब वह सब स्पष्ट हो गया तब अनुमान अलग क्या रहा ? यदि स्पष्ट जानकर भी उनको अनुमानसे जाननेकी जरूरत पड़े तो योगियोंका भी स्पष्ट ज्ञान प्रत्यक्ष न कहलायेगा, वहां भी अनुमान बन जायगा। इससे व्याप्तिके ज्ञानको प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता है। जो स्पष्ट ज्ञान है वही प्रत्यक्ष होता है, उसके बारेमें हम जो कुछ विचारते हैं वह सब अस्पष्ट बोध है।

संदेहविच्छेदके लिये अनुमानकी आवश्यकताका असंगत अभिमत— शायद यह कहो कि धुवां देखकर अग्निका बोध हो गया तो जहाँ जहाँ धुवां है वहाँ वहाँ अग्नि है यह ज्ञान हुआ तो यह तो प्रत्यक्ष है लेकिन कोई इसमें सन्देह न आजाय कोई भूल न बन जाय इसके लिए अनुमान बनाया जाता है। अरे भाई ! जो एकबार सुविदित हो गया उसमें संशय आदिक कैसे बन सकते हैं ? निश्चय है और फिर उसमें सन्देह बने ? शायद यह कहो कि आगामी कालमें संदेह न बन बैठे, इसलिये अनुमान प्रमाण माना है तो भाई स्मरण ज्ञान है, पहिले जान लिया किसीको और बहुत दिनों के बाद उसीको देखकर फिर भूल हो गयी कि हमने तो नहीं देखा है, फिर ख्याल आ गया कि हाँ, देखा है, तो समारोप होनेके बाद जो ज्ञान हुआ है वह भी प्रमाण मान लो अर्थात् स्मरण भी प्रमाण है। बौद्धजन स्मरणको प्रमाण नहीं मानते । उनके केवल दो ही प्रमाण हैं— प्रत्यक्ष और अनुमान । जितने भी अन्य अन्य ज्ञान हैं स्मरण आदिक वे सब अनुमान कहलाते हैं लेकिन जब विषय सबका न्यारा न्यारा है तो सब एक अनुमान कैसे हो सकते हैं ? अनुमानसे कुछ समझा जाता, स्मरणसे कुछ समझा जाता और तर्कसे कुछ जाना जाता है, तो ये ज्ञान चूँकि स्पष्ट नहीं हैं अत: परोक्ष हैं।

स्वपर घटित करते हुए स्वाध्यायकी आवश्यकता सूत्रजीमें पढ़ तो रोज जाते हैं—'भक्तिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनिवोध इत्यनर्थान्तरम् ।' पर यह तो पता नहीं करते कि यह सब बात हमारी ही कही जा रही है। देखिये ! प्रथम सूत्रमें तत्त्वार्थसूत्रमें प्रमाण और नयोंका वर्णन है, पर प्रमाण और नयोंके वर्णनको कुछ समझ भी लें, जान भी लें तो हम इस तरह जाना करते हैं कि अलग बात है यह कुछ। यह प्रमाणकी बात है, यह नयोंकी बात है इस तरह नहीं जानते कि हम आप की जो परिणतियां बनती हैं उन परिणतियोंकी यह बात कही जा रही है सुन लेंगे, ज्ञान दो होते हैं - प्रत्यक्ष और परोक्ष । जैसे किसीके धनकी कोई चर्चा करे— उसका धन ऐसा है, ऐसा है, इसी तरह ज्ञानकी भी चर्चा कर लेते हैं कि ज्ञान प्रत्यक्ष होता है, परोक्ष होता है, उसे आत्मसात् करके कि ज्ञान क्या ? वह ज्ञान मैं हूं तो हूँ और उस ज्ञानकी ही बात कही जा रही है कि इस मुझ ज्ञानकी ही परिणति कोई प्रत्यक्ष रूप होती है कोई परोक्षरूप होती है। शास्त्रस्वाध्यायमें जितना जो कुछ भी हम पढ़ते हैं उस सबको अपने आपके बारेमें सम्बन्धित बनाकर अध्ययन करें तो उसका लाभ हितके लिए है और केवल पढ़ लिया, जान लिया, एक समझ लिया कि यह है, यह है, अपनेसे अलग करके उस विषयको समझना आत्महितकी बात नहीं है ।

प्रत्येक प्रतिपादनोंमें आत्महितका शिक्षण—कुछ भी बात आप पढ़ लीजिए, उसे अपने हितके लिए अपने आपपर घटित कर सकते हो। कोई चारों गतियोंका वर्णन चल रहा हो, नारकी जीव ऐसे होते हैं, तिर्यञ्च ऐसे होते हैं आदि, तो उस वर्णनको सुनकर यदि आत्महितकी दृष्टिसे स्वाध्याय किया जा रहा है तो

यह बात दिमागमें अवश्य रहेगी कि रत्नत्रयकी साधना न बन सकनेसे कुछ ऐसी ऐसी गतियां हमारी होती रहेंगी और उस रत्नत्रयकी साधनाके विना ये गतियाँ होती हैं, ये जीव भी मेरे ही स्वरूपके समान हैं, ये सब हमारी ही तरह अपनी अपनी करनीका फल भोग रहे हैं, मैंने भी यदि खोटी करनी की तो इस तरहके दुःख मुझे भी सहन करने होंगे, ऐसी सारी बातें तो उस वर्णनको सुनते हुए मनमें आती ही हैं।

आत्मसात्करणकी पद्धति—अथवा जैसे किसी भिखारीपर किसीने दया उत्पन्न की उसकी वेदनाको देखकर, तो उसने अपने आपमें भी उस भिखारीकी ही भांति वेदना उत्पन्न कर ली तब उसकी वेदनाको मिटानेके लिए भोजन वस्त्र आदिक दिए। तो अपने आपपर किसी न किसी अंशमें यहां भी उसकी परिणतिको घटाया है। उस घटनाके कारण उसमें वह दया उत्पन्न हुई, यही मर्म है और इसी कारण दयाका दूसरा नाम अनुकम्पा रखा है। अनु मायने अनुसार, कम्पा मायने कँप जाना अर्थात् उस दूसरेकी वेदनाको जानकर उसके अनुसार यहाँ भी कुछ कँप जाना, यहाँ भी कुछ दहल उठना इसका नाम अनुकम्पा है। तो जैसे किसी पुरुषमें किसी दूसरेके प्रति दयाभाव उत्पन्न होता है तो वह पुरुष उस दूसरे पुरुषका किसी रूपमें आत्मसात् करता है तब दयाभाव बनता है। इसी प्रकार हम स्वाध्यायमें जो कुछ भी विषय सुनें अथवा पढ़ें उसे आत्मसात् करके पढ़ते हैं तो उससे हमें हितका मार्ग मिलता है और उसे यों ही जानकर पढ़ें कि यह तो एक बात कही जा रही है, कुछ बाहर पड़ी हुई बात है इस तरह जानकर उससे लाभ नहीं उठाया जा सकता है। चाहे वह एक ज्ञानस्वरूपकी ही बात क्यों न हो। पर जो अपनेसे न्यारा बाहरमें कहीं ज्ञानका स्थापन करके कि इस ज्ञानकी बात यहां कही जा रही है, आत्मसात् नहीं किया गया तो उससे अपने आपको कुछ लाभ नहीं उत्पन्न होता है।

प्रत्यक्ष और परोक्षके लक्षणकी दृष्टि —यहाँ यह चर्चा चल रही है कि कि प्रत्यक्ष और परोक्षके स्वरूपको हम अपने आपपर घटाते हुए सुनें तो इससे जो विशेष बोध होगा वह सब हमारे ज्ञानानुभवमें सहायक बनेगा, उसमें यह स्पष्टता उत्पन्न करेगा। तो अब तक यह कहा गया है कि जो विशद है स्पष्ट है वह तो प्रत्यक्ष है और जो स्पष्ट नहीं है वह परोक्ष कहलाता है। सैद्धान्तिक दृष्टिसे प्रत्यक्ष का लक्षण है कि आत्माका ही आलम्बन लेकर इंद्रिय मनकी सहायताके बिना जो ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष है। यहाँ दार्शनिक पद्धतिसे, अन्य सिद्धान्तियोंमें प्रयोजनीभूत बात सुगमसिद्ध हो इस लक्षणसे, व्यवहारमें यथार्थ विभाजन हो इस पूर्तिके भावसे तथा सिद्धान्तसे भी विरोध न आवे इस शैलीसे यहाँ यह लक्षण कहा जा रहा है कि जो विशद ज्ञान है वह प्रत्यक्ष है तथा जो अविशद ज्ञान है वह परोक्ष है।

हमारे मति श्रुतज्ञान—हम आप लोगोंके इस समय मतिज्ञान और श्रुत-

ज्ञान है। श्रुतज्ञानका जो अर्थ है शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान और दूसरोंसे शब्द सुनते हैं तो उन शब्दोंको सुनकर यह पदार्थ विषय कहा गया इस प्रकारका ज्ञान, पुस्तकोंको पढ़ने में हम यह ज्ञान कर लेते हैं कि यह पदार्थ ऐसा है तो यह श्रुतज्ञान है तथा किसी भी पदार्थको मतिज्ञानसे जानकर उसके सम्बन्धमें और विशेषताओंको जानना यह है श्रुतज्ञान। और, मतिज्ञान सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष, स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमानरूप होते हैं।

सांव्यवहारिककी प्रत्यक्षता और स्मृतिज्ञानकी परोक्षता—सांव्यवहारिक प्रत्यक्षमें तो हम इन्द्रियके द्वारा सीधा पदार्थोंको जान जाते हैं। जैसे छूकर जाना कि यह ठंढा है अथवा गर्म है, चखकर जाना कि यह मीठा है अथवा कड़वा है, घ्राण से जाना कि इसमें गंध है, चक्षुसे जाना कि यह अमुकरूप है और कर्णोंसे शब्दोंका ज्ञान हुआ। इसी प्रकार मनसे भी कुछ सीधा जाननेमें आ गया यह सब है सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष अर्थात् वास्तवमें तो परोक्ष है, किन्तु कुछ स्पष्टता इस ज्ञानमें है इस कारण यह व्यवहारसे प्रत्यक्ष कहा जाता है। अब शेषके बचे हुए ज्ञानमें जैसे स्मरण, यहां बैठे ही बैठे किसी बातका ख्याल किया जाने लगे, किसी इष्टका अनिष्टका स्मरण होने लगे वह है स्मरण। यह स्मृतिज्ञान बहुलतया सांव्यवहारिक प्रत्यक्षसे जो जाना गया था उसके विषयमें होता है, यह स्मरण है परोक्षज्ञान। इस स्मरणमें सामने खड़े हुए पुरुषकी भांति स्पष्ट ज्ञान हो रहा है जिसका कि स्मरण किया जा रहा है। स्पष्ट तो नहीं है तो वह परोक्षज्ञान हुआ।

प्रत्यभिज्ञान और तर्कज्ञानकी परोक्षरूपता—किसी पुरुषको देखकर यह ज्ञान करना कि यह वही है जिसको हमने अमुक जगह देखा था, यह प्रत्यभिज्ञान है। किसी पुरुषको देखकर ऐसा ज्ञान होना कि यह तो उस मनुष्यके समान है, यह प्रत्यभिज्ञान हुआ। तो इस प्रत्यभिज्ञानमें भी जो एकता जानी गयी, समानता जानी गयी वह क्या प्रत्यक्ष है ? जैसे कि आंखों देखी हुई बात स्पष्ट है क्या उस तरह स्पष्ट है ? उस तरह स्पष्ट तो नहीं है, इस कारण प्रत्यभिज्ञान भी परोक्ष है, इसी प्रकार एक व्याप्तिज्ञान भी चलता है, जैसे आँखोंसे किसी नीमके वृक्षको देखकर यह ज्ञान करते कि यह वृक्ष है, जो नीमके वृक्ष होते हैं वे तो वृक्ष हैं ही। यह व्याप्य व्यापकमें व्याप्ति है। धुवाँ देखकर अग्निका ज्ञान किया जाय, उस प्रसङ्गमें ऐसा तर्क लगाना कि जहाँ अग्नि नहीं होती वहाँ धुवां नहीं हुआ करता है इतना अंश जो कार्य कारण भावको बताता है यह है व्याप्तिज्ञान। तो व्याप्तिज्ञानमें जो कुछ जाना गया, क्या जाना गया ? पदार्थका अविनाभाव, क्या यह सामने देखे जाने वाले पदार्थकी तरह स्पष्ट है ? नहीं है, अतएव परोक्ष है इस प्रकरणमें इस व्याप्तिज्ञानकी ही चर्चा चल रही है। व्याप्ति ज्ञान परोक्ष होता है। तर्कमें आया हुआ विषय, विचारमें, युक्तिमें, कानूनमें आयी हुई बात क्या सामने देखे हुए पदार्थकी तरह प्रत्यक्ष है, स्पष्ट है ? नहीं। वह परोक्ष है।

केवल एक मनसे अविनाभाव जाना जा रहा है।

क्षणक्षयवादियोंकी ओरसे अस्पष्टताके सम्बन्धमें विकल्प—क्षणक्षयवादी इस व्याप्तिज्ञानको प्रत्यक्ष मानते हैं। तब ये क्षणक्षयवादी अपना पक्ष सिद्ध करनेके लिए यह पूछ रहे हैं कि व्याप्तिज्ञानमें अस्पष्ट ज्ञान हुआ। तो यह जो अस्पष्टता है वह पदार्थका धर्म है अथवा ज्ञानका धर्म है ? जैसे स्मरणज्ञानमें हमने जो कुछ समझा यहीं बैठे हुए ख्याल कर लिया कि गिरिनार जीमें ५वीं टोंकमें ऐसी हालत रहती है, तो जो कुछ हमने स्मरणमें जाना, अस्पष्ट जाना तो अस्पष्टके बारेमें कोई यह प्रश्न कर सकता है कि यह अस्पष्टता ज्ञानकी है या टोंककी है ? प्रश्न तो किए जा सकते हैं, इसी प्रकार यहाँ यह प्रश्न किया जा रहा है कि व्याप्तिज्ञानमें जो कुछ भी बोध हुआ अस्पष्ट बोध हुआ। इसी प्रकार व्याप्तिज्ञान अस्पष्ट जानता है, तो यह अस्पष्टता पदार्थका धर्म है या ज्ञानका धर्म है ?

ज्ञानधर्म अथवा अर्थधर्मके रूपसे अस्पष्टताकी असिद्धिका प्रयास—यदि कहो कि यह अस्पष्टता ज्ञानका धर्म है तो फिर यह अस्पष्टता ज्ञानमें ही रहे, फिर पदार्थमें अस्पष्टता क्यों विदित होती है ? दूसरा अस्पष्ट हो उसके कारण अगर दूसरा अस्पष्ट होने लगे तो इसमें अनेक विडम्बनाएँ हैं। अगर हम दूर की चीजें अस्पष्ट जान रहे हैं तो पासकी चीज भी अस्पष्ट समझमें आये ! क्योंकि अब तो यह मान लिया कि ज्ञान अस्पष्ट है और उससे पदार्थ अस्पष्ट बन जाता है। तो कुछ भी अस्पष्ट हो, सब अस्पष्ट बन जायेंगे। इससे अस्पष्टता ज्ञानका धर्म तो साबित कर नहीं सकते। अगर कहो कि अस्पष्टता उस पदार्थका धर्म है जो जाना गया तो पदार्थका धर्म है अस्पष्ट और तुम कहते फिरते हो कि ज्ञान अस्पष्ट है तो व्याप्तिज्ञान कैसे अस्पष्ट याने अप्रत्यक्ष सिद्ध होगा ? देखिये ! दूसरी जगह तो हो अस्पष्टता और उससे दूसरेको मानलो अस्पष्ट या कुछ भी हो भिन्नाधिकरणके हेतुसे अगर साध्य मान लिया जाय तो जो चाहे सो कह बैठो—कौवा काला है इस कारण यह मकान सफेद है, अरे कोई युक्ति भी है ? ऐसी बात सुनकर तो कोई पागल ही कहेगा। युक्ति फबती ही नहीं ! तो पदार्थ यदि अस्पष्ट है उसके कारण यदि ज्ञान को अस्पष्ट मान लें तो लोकमें ऐसी अनेक विडम्बनाएँ कही जाने लगेंगी।

व्याप्तिज्ञानकी अस्पष्टता न माननेका कारण—यहां क्षणक्षयवादी बौद्ध जन यह सिद्ध कर रहे हैं कि व्याप्तिका ज्ञान अस्पष्ट ज्ञान नहीं है, वह प्रत्यक्ष है, परोक्ष नहीं है. ऐसा कहनेका प्रयोजन यह है कि प्रमाण दो ही हुआ करते हैं उनके मतमें—प्रत्यक्ष और अनुमान। सो कोई भी ज्ञान हो, उन ज्ञानोंका अलग अस्तित्व सिद्ध न होना चाहिए। वह या तो प्रत्यक्षमें गर्भित हो या अनुमानमें। तो व्याप्तिज्ञानको अनुमानमें तो यों गर्भित नहीं कर सकते कि अनुमानका रूप लम्बा होता है, उसमें

दृष्टान्त होते हैं, उसमें पक्ष साध्य साधन ये सब अवयव होते हैं। तो अनुमानमें तर्क को गर्भित किया नहीं जा सकता था तो प्रत्यक्षमें गर्भित किया जा रहा है।

अस्पष्टताके विकल्पोंका निराकरण - आचार्यदेव तर्कविषयक समस्याका समाधान कर रहे हैं। प्रथम तो जैसा का तैसा उत्तर देकर समाधान कर रहे हैं पर बादमें सिद्धान्तकी बात रखकर कहेंगे। क्या कहा क्षणिकवादियोंने कि यह तो बतावो कि व्याप्तिज्ञानसे जो जानी गयी अस्पष्टता है वह अस्पष्टता ज्ञानका धर्म है या पदार्थ का। अच्छा तुम प्रत्यक्षसे पदार्थका स्पष्ट ज्ञान मानते हो तो बतावो कि प्रत्यक्षसे जो स्पष्ट जाना गया वह स्पष्टता पदार्थका धर्म है कि ज्ञानका धर्म है ? पदार्थका धर्म कहोगे तो पदार्थमें तो स्पष्टता है और तुम ज्ञानमें स्पष्टता मानते तो यह कैसे बनेगा ? ज्ञानका धर्म कहोगे तो उसमें भी यही बात है। ज्ञान स्पष्ट है तो पदार्थ कैसे स्पष्ट हो जायगा ? शायद यह कहो कि विषयमें विषयीके धर्मका उपचार करके बन जायगा, ज्ञानसे जो पदार्थ जाना ज्ञानमें जो धर्म है उस धर्मका उपचार पदार्थोंमें भी किया गया, अर्थात् स्पष्ट तो होता है ज्ञान और उपचारसे कहते हैं कि पदार्थ स्पष्ट हो गया तो ऐसी ही बात परोक्षज्ञानमें भी मानलो अस्पष्ट तो रहता है ज्ञान और पदार्थ अस्पष्ट है ऐसा उपचार किया जाता है।

स्पष्टता और अस्पष्टताके ज्ञानधर्मत्वकी सिद्धि – बात यहाँ यह है कि स्पष्टता और अस्पष्टता तो ज्ञानका धर्म हुआ करता है, और हम ज्ञानसे ही सारा व्यवहार बनाया करते हैं, ज्ञानमें परमार्थसे ज्ञान ही जाना जाता है, पर वह ज्ञान किस ढङ्गका बने किस आकारका बने, उस ज्ञानमें कोई विषय जरूर हुआ करता है तो उस ज्ञानका जो विषय पड़ा, फिर हम उस विषयके सम्बन्धमें अनेक बातें प्रतिवादित किया करते हैं, जैसे हम दर्पण ही देखें और दर्पण देखकर पीठ पीछेके बालकोंकी सारी हरकतोंका वर्णन करते रहते हैं, हमने उन उन बालकोंको नहीं देखा, देखा उस दर्पणको ही पर उन बालकोंकी सारी क्रियावोंको देखते रहते हैं और उनका वर्णन करते रहते हैं कि यह वह है और वह यह है इसी प्रकार हम आप सब जीव सदा ज्ञानको ही जानते हैं, ज्ञानका जो आकार बनता है केवल उसमें ही रहते हैं उसे ही जानते हैं, पर उसे जानकर चूँकि किन्हीं पदार्थोंके सम्बन्धमें ही जानकारी बनी है तो हम पदार्थों का वर्णन करते रहते हैं, तो स्पष्ट हो तो ज्ञान है, अस्पष्ट हो तो ज्ञान है। फिर उस ज्ञानमें जो जाना जाता है उस पदार्थके सम्बन्धमें यह स्पष्ट समझा गया है, अस्पष्ट समझा गया इस तरहका व्यवहार करते हैं। यदि स्पष्टता पदार्थका धर्म हो तो फिर सदा पदार्थ ज्ञानमें आते रहना चाहिए फिर कभी कोई पदार्थ ज्ञानमें आया और कभी यह ज्ञानमें न आया और कभी यह ज्ञानमें न आया इस प्रकारकी बात न होना चाहिए। इसमे बात तो यही से कि जो ज्ञान विशद हो, स्पष्ट समझने वाला हो वह तो कहलाता है प्रत्यक्ष और जो ज्ञान अस्पष्ट हो उसे कहते हैं परोक्ष।

क्षणिकवादियोंके तदाकार व अतदाकारसे स्पष्टता व अस्पष्टताकी व्यवस्था—स्पष्ट और अस्पष्ट ज्ञानके विषयमें क्षणिकवादी लोग ऐसा मानते हैं कि अस्पष्ट ज्ञान वह कहलाता है जिसमें कोई विषय नहीं होता और स्पष्ट ज्ञानका विषय होता है, इसे और शब्दोंमें स्पष्ट समझ लीजिये कि प्रत्यक्षज्ञान तो तदाकार होता है और जितने अतदाकार विषय हैं वे सब अस्पष्ट ज्ञान होते हैं। थोड़ा सा उपयोग लगा कर सुनिये यह सिद्धान्तकी और अपने आपके स्वरूपके मर्मकी बात बतायी जा रही है और यह भी समझते जावेगे कि बेचारे क्षणिकवादियोंने भूल नहीं की अपनी बुद्धि जितनी थी उसके अनुसार बहुत कुछ अच्छा कहा यह भी थोड़ा परख लो, और यह भी परखको कि इस सम्बन्धमें त्रुटि किस जगह की जिससे कि ऐसा सिद्धान्त बन गया। जैसे झट आंखोंसे निरखकर जो समझा गया, जो पदार्थ जल्दी समझा गया यह तो हो गया प्रत्यक्ष अब थोड़ी देर बाद उसमें कल्पनाएँ उठने लगी तब ये ज्ञान जितने भी हुए ये निर्विषय हुए, जैसा जो है उसे वैसा जानना यह कहलाता है इसका तदाकार ज्ञान और जो पदार्थ नहीं है उसे जानना वह अतदाकार ज्ञान। क्षणक्षयादियोंका सिद्धान्त बताया जा रहा हैं।

क्षणिकवाद सिद्धान्तमें निर्विषयत्व और अतदादाकारका रूप—अतदाकार ज्ञानकी अस्पष्टताकी मान्यताके प्रसङ्गमें उनसे पूछा जा रहा है कि कभी कभी दो चन्द्रमा दिखने लगते हैं निकट ही निकट कुछ ही दूरमें बिल्कुल स्पष्ट दीखते हैं. तो चन्द्रमाका दिख जाना फिर तो प्रत्यक्ष ज्ञान होना चाहिए ? इसपर वे क्षणक्षयवादी उत्तर देते हैं कि हम प्रत्यक्षज्ञानकी बात क्या करें वह तो परोक्षज्ञान भी नहीं है, वह तो समीचीन भी नहीं है। तो चन्द्रमा दिख जाना यह अस्पष्ट बात भी नहीं, क्योंकि यों नहीं है कि दो चन्द्र वहा हैं नहीं और जान रहे हैं तो यह तो निर्विषय ज्ञान है, मिथ्या ज्ञान है। जब आंखोंका दोष दूर करके बादमें उस चन्द्रमाको देखते हैं तब तो एक ही चन्द्र दीखता है। तो जैसे यह निर्विषय है इसी प्रकार क्षणक्षयवादी जन उन सारे ज्ञानोंको निर्विषय मानते हैं जिनमें कुछ वात समझमें आये। जैसे हम आप लोगों की समझमें आ रहा है कि यह चौकी है। तो यह चौकी है यह जो ज्ञान है यह निर्विषय ज्ञान है। चौकी है ही नहीं। जैसे स्वप्नमें अनेक चीजें दिखा करती हैं पर वहां कोई भी चीज है नहीं, इसी प्रकार इस जीवनके लम्बे समयमें ये चीजें दिख रही हैं तो ये कुछ चीजें नहीं हैं। तो फिर वास्तविक चीज क्या है ? इन सब पदार्थोंमें जो निरंश अंश है वह वास्तविक चीज है, तो कुछ भी हाथ न आया। वह है तत्त्व और उसका बोध हुआ वह है प्रत्यक्ष। बाकी या तो परोक्ष है या मिथ्या है।

क्षणक्षयवादमें निरंश अंशकी परमार्थरूपता—क्षणिकवादियोंका यह सिद्धान्त है कि इस चौकीमें जो ऐसा अंश है कि जिसका दूसरा टुकड़ा न हो सके, ऐसा अंश जो दूसरे समयमें न रह सके, ऐसा अंश जिसमें शक्तिकी डिग्रियाँ नही होतीं

अर्थात् एक जघन्य डिग्री हो शून्यसे उठकर केवल १ नम्बरका ही उसमें पावर हो, ऐसा जो निरंश अश है वह तो है परमार्थ वस्तु, बाकी जो कुछ दीख रहा है वह सब झूठ है। तो इस सारेका जो कुछ ज्ञान है वह सब मिथ्या ज्ञान है और उस निरंश अंशका जो ज्ञान है वह है सही ज्ञान। उसके जाननेसे मोक्ष मिलेगा, बाकी जाननेसे ससारका बन्धन है। यह क्षणिकवादका सिद्धान्त है।

उत्तरज्ञानसे बाधित होनेसे पूर्वज्ञानकी निर्विषयताकी असिद्धि—दोषनिवारणके लिये क्षणिकवादमें यह कहा गया कि जो दो चन्द्रमा दिखते हैं वह निर्विषय है क्योंकि बादमें स्पष्ट ज्ञानसे यह झट मालूम होता है कि नहीं, चन्द्रमा तो एक ही है। तो बादमें होने वाले स्पष्ट ज्ञानसे बाधा आनेसे यदि पूर्वज्ञान निर्विषय हो जाता है तो बाहरमें हम कोई चीजको अस्पष्ट निरख रहे हैं तो उससे पासमें जो पदार्थ का स्पष्ट प्रतिभास हो रहा है वह भी बाधित मान लिया जाय। कदाचित् एक ज्ञानसे दूसरा ज्ञान अगर बाधित भी हो जाता है तो भी पीछे ही तो निर्विषय हुआ। जिस समय ज्ञान जो कुछ जानता है उस समय ज्ञान निर्विषय नहीं हुआ करता है। ज्ञान है और वह ज्ञान किसी न किसी पदार्थको जातता रहता है। यह ज्ञानका स्वभाव है। जब तक यह ज्ञान मोहवश बाह्य पदार्थोंके जाननेमें प्रवृत्ति बनाये रहता है तब तक इस जीवको आकुलता है और जब यह ज्ञान अपने स्वरूपको जाननेमें प्रवृत्त होता है तो उसकी आकुलता शान्त हो जाती है, ऐसा ही अशान्तिका अभाव यदि कुछ देर तक इसी निर्विकल्प दशामें बना रहे तो उसको कैवल्यकी प्राप्ति हो जाती है।

इच्छासे विकासका विरोध देखिये भैया ! कितना विचित्र जालसा है कि जो वैभवके संचयके लिये शिर उठाये फिरता है उसे वैभव मिलता नहीं और जो वैभवके संचयसे उपेक्षा रखकर कुछ वाञ्छा ही नहीं रखता उसके चरणोंमें सारा वैभव मानो एकत्रित होकर पूजने आता है। जब तक हम इन सब पर पदार्थोंको जाननेकी तड़फन बनाये रहते हैं तब तक जानकारी बनती नहीं और जब सब परका विकल्प तोड़कर विश्रामसे बैठते हैं, किसी भी पदार्थका जाननेकी इच्छा नहीं रखते हैं जब ऐसी बात मनमें ठानकर बैठते हैं कि किसी भी बाह्य वस्तुसे मुझे लाभ क्या ? उनमें पड़कर क्यों अपना समय बरबाद करना, क्यों उनमें पड़कर अपने उपयोगको मलिन करना, क्यों अपने इस ज्ञानमहलमें इन बाहरी पदार्थोंको स्थान दें। मुझे कोई आवश्यकता नहीं कि मैं किन्हीं बाहरी पदार्थोंको जानूं, बाह्यको जाननेसे ही तो हमने क्लेश पाया है, तो किसी भी बाह्यको जाननेकी इच्छा जब न रही और विश्रामसे अपने आपमें स्थित हो गया तो उसमें एक ऐसा अद्भुत बल प्रकट होता है कि विश्व के समस्त पदार्थ अवश होकर मानो जानकारी में उन्हें आना ही पड़ता है। इस तरह से उसके ज्ञानमें सारे पदार्थ प्रतिबिम्बित होने लगते हैं।

केवलज्ञानमें सर्वजाननकी अनिवार्यता—कोई योगी पुरुष ऐसा कर

सकता है कि मुझे किसी भी पदार्थ को नहीं जानना है, हम तो अपने आपमें ही ठहरे हैं, कोई पदार्थ मेरे जाननेमें मत आये, ऐसी बात अब सर्वज्ञदेवके नहीं निभ सकती, उन सब पदार्थोंका मानो चैलेन्ज ही है कि हम तुम्हारे ज्ञानमें आये बिना नहीं रह सकते। हम सबको तुम्हें जानना ही पड़ेगा और एक बार नहीं, प्रतिसमय निरन्तर तुम्हें जानते ही रहना पड़ेगा, क्यों सर्वज्ञ हुए ? अगर तुम्हें हम सबको जानना न था तो तुम सर्वज्ञ ही न बनते। अगर सर्वज्ञ हुए हो तो तुम्हें हम सबको जानना ही पड़ेगा यह एक अलङ्कारमें कहा जा रहा है। कहीं वे पदार्थ इस तरहसे कहा नहीं करते कोई जबरदस्ती नहीं। इसी प्रकारसे समझ लो, जो व्यक्ति सर्व परका विकल्प त्यागकर एक अपने आपमें स्थित होकर विश्रामसे बैठा हुआ है तो सर्व पदार्थोंको मानो विवश होकर उसकी जानकारीमें आना ही पड़ता है।

इच्छामात्रमें विकासकी अवरोधकता—अभी एक प्रश्न हुआ है कि जिज्ञासा अर्थात् जाननेकी इच्छा हेय है अथवा उपादेय ? तो उसका समाधान यह है कि कुछ पदवियोंमें, कुछ स्थितियोंमें जहाँ कि अनेक विषय कषाय विकल्प सताते रहते हैं वहाँ कुछ ऐसे तत्त्वके जाननेकी इच्छा बने कि जिसकी जानकारी मिलनेपर ये विकल्प शान्त हो जायें तो उस कालमें उस पुरुषके लिए वह जिज्ञासा उपादेय है, पर जिज्ञासाके उपादेयका निर्णय सर्वरूपोंमें इसलिए नहीं किया जा सकता कि वही पुरुष उस तत्त्वके जाननेके बाद पदार्थोंके सही स्वरूपको समझनेके बाद अब उसे जाननेकी इच्छा भी बुरी लग रही है और अब वह यह चाह रहा है कि कुछ भी बाह्य तत्त्व मेरे जाननेमें न आये, कुछ भी विकल्प मेरे ज्ञानमें न आये। मैं निर्विकल्प रहना चाहता हूँ इसलिए परमार्थको तो जाननेकी इच्छा है। चाहे ज्ञानको इच्छा हो या अन्यकी इच्छा हो, इच्छा मात्र हेय है। पर स्थितियोंके अनुसार जब वह जिज्ञासा हित करनेमें समर्थ है तब तो उपादेय है, पर परमार्थसे तो इच्छामात्र आत्माके विकासके अवरोधका ही कारण है अर्थात् एक किकल्प ही कारण है।

ज्ञानका स्वरूप और उसकी वर्तमान पद्धतिका कारण—आत्मा तो ज्ञानस्वरूप ही है। ज्ञान स्वरूपसे ही प्रकट होता है, किन्हीं बाह्य साधनोंसे प्रकट नहीं होता है, किन्तु अनादिसे इस आत्मापर ज्ञानावरण कर्म छाया हुआ है, तब जितना जिसके ज्ञानावरणका क्षयोपशम होता है, अलगाव होता है उसके उतने ज्ञानका विकास होता है। इस क्षयोपशमिक ज्ञानविकासके उत्पादकी ऐसी प्रकृति है वह यथा-योग्य बाह्य नोकर्मोंका सन्निधान पाकर होता है। इसी मूल व्यवस्थाके कारण मति-स्मृति, प्रत्यभिज्ञान आदिक ज्ञानोंके विकासमें विधि, पद्धति. स्थिति बिभिन्न हो गई हैं तब इसकी सिद्धिमें नाना सिद्धान्त बन गये हैं। मूल स्वरूपकी दृष्टि रखकर जाननेमें विवाद नहीं रहता।

स्पष्ठता और अस्पष्टताकी ज्ञानधर्मत्वके रूपमें सिद्धि—किसी ज्ञानसे

पदार्थ स्पष्ट जाना जाता है और किसी ज्ञानसे पदार्थ अस्पष्ट जाना जाता है। तो इसमें जो स्पष्टता हुई अथवा अस्पष्टता हुई वह क्या ज्ञानका धर्म है या पदार्थका धर्म है? इसपर विचार करते हुए यह बात बतायी थी कि स्पष्टता तो ज्ञानका ही धर्म है अथवा अस्पष्टता ज्ञानका ही धर्म है केवल ज्ञानके धर्मको विषयभूत पदार्थोंमें उपचरित करके यह व्यवहार किया जाता है कि यहाँ यह पदार्थ स्पष्ट रहा, यह पदार्थ अस्पष्ट रहा। देखिये व्यवहारमें भी लोग यही कहते हैं कि हमको वह पदार्थ स्पष्ट लगा और अमुक पदार्थ अस्पष्ट लगा। पदार्थ तो जाना तक भी नहीं जाता परमार्थसे। जाननेमें तो अपने अन्तरका ज्ञेयाकार आया करता है। आत्मा अपने प्रदेशोंको छोड़कर कहीं बाहरी गुणोंका व्यापार नहीं करता। आत्माके गुणोंका जो कुछ भी व्यापार होता है, प्रयत्न होता है वह आत्मप्रदेशोंमें ही होता है फिर स्पष्टता व अस्पष्टताको अर्थका धर्म कहना तो असंगत ही है।

पदार्थके प्रदेशोंमें ही पदार्थकी सर्वस्वता— देखिये! किसी भी पदार्थका परिणमन पदार्थसे बाहर नहीं होता। जैसे लोग झट कह देते हैं कि यह प्रकाश सूर्यका है। अरे सूर्य कितना बड़ा मानते हो? जितना भी बड़ा मानो, करीब पौने दो हजार कोशका मानो तो सूर्यका प्रताप, प्रकाश, रूप, कान्ति सब कुछ उस सूर्यके प्रदेशोंमें ही रहेंगे। सूर्यके प्रदेशोंसे बाहर सूर्यकी कोई भी चीज कभी पहुँच ही नहीं सकती। तब फिर यह प्रकाश किसका है? जो चमक रहा है उसीका ही प्रकाश है। भींट चमक रही है तो वह भींटका प्रकाश है, दरी जितना कुछ चमक रही है वह दरीका प्रकाश है, इस प्रकार पदार्थके परिणमन होनेमें निमित्त सूर्य है। अतएव पदार्थके प्रकाशको सूर्यमें आरोपित करके, निमित्तमें आरोपित करके लोग ऐसा व्यवहार करते हैं कि यह सब सूर्यका प्रकाश है और यह व्यवहार बहुत सुगम लगता है और यह व्यवहार बहुत सुगम लगता है और यह जाननेमें कठिनाई लगती है कि यह प्रकाश तो प्रकाशित पदार्थका ही प्रकाश है सूर्यका नहीं। तो इसी प्रकार जब कोई व्यवहार किसी कारणसे विशेष प्रचलित हो जाता है तो उसके विरुद्ध कुछ बात सोचनेमें कठिनाई विदित होती है। ज्ञान तो बाहरी पदार्थोंको परमार्थसे जानता तक भी नहीं है फिर पदार्थको स्पष्ट कहना अथवा अस्पष्ट कहना जरा भी फब नहीं सकता। लेकिन जैसे प्रकाशित पदार्थके प्रकाशका निमित्तमें आरोप किया गया है सूर्यका प्रकाश है। इसी प्रकार ज्ञानकी स्पष्टता और अस्पष्टताका निमित्तमें अर्थात् विषयमें आरोप किया जाता है, यह स्पष्टता पदार्थकी है।

स्पष्टत्व और अस्पष्टत्व अर्थकी सिद्धिके स्रोतका प्रश्न—यहाँ क्षणिकवादी कुछ विकल्पोंसे अपना पक्ष सिद्ध करना चाहते हैं कि यदि ज्ञानके धर्मका विषयमें उपचार किया जानेसे पदार्थमें स्पष्टता और अस्पष्टताका व्यवहार होता है, थोड़ी देरको यह मान भी लिया जाय तो भी यह तो बतलाओ कि विषयी ज्ञानमें

अर्थात् जानने वाले ज्ञानमें स्पष्टपना या अस्पष्टपना आया कहाँसे ? इस धर्मपनेकी सिद्धि कैसे करोगे ? यदि अपने ज्ञानकी स्पष्टता और अस्पष्टतासे ही करोगे तो इसमें अनवस्था दोष होगा अथवा इतरेतर दोष आयगा। वही ज्ञान अपनी स्पष्टताके द्वारा अपने स्पष्टत्व धर्मको जान ले तो जब स्पष्टत्व धर्म सिद्ध हो तो स्पष्टता जानी जाय। और जब स्पष्टता जान लें तब धर्म सिद्ध हो। या अन्य अन्य स्पष्टताबोधक ज्ञान मानने पड़ेंगे तो अनवस्था होगी। यदि कहो कि स्वतः ही उसके स्पष्टपनेकी और अस्पष्टपने की सिद्धि होती है तो फिर सारे ज्ञानोंमें एक साथ समानरूपसे या तो स्पष्टता आ जानी चाहिये या अस्पष्टता। क्योंकि, अब ज्ञानोंमें स्पष्टत्व या अस्पस्टत्व ज्ञान धर्मपना तो स्वतः ही होने लगा है। ऐसी युक्तियोंसे क्षणक्षयवादी विकल्प रखकर ज्ञानकी सिद्धिका निराकरण कर रहे हैं।

यथार्थता और अयथार्थताके परिचयका उपाय विकल्पोंका उत्थापन—इस प्रसङ्गमें एक बात यह भी जान लीजिए कि किसी के मंतव्यका निराकरण करने के लिए आप उसके स्वरूपमें विधिमें जितना अधिक विकल्प उठाकर पूछेंगे उतना ही उसका पक्ष कमजोर हो जायगा। और यदि कोई गलत बात है तो वह तो उलझ जायगा, उससे उत्तर भी न बन सकेगा और स्ववचन विरोध होगा। यदि कोई सत्य बात है तो कितने ही विकल्पोंसे पूछा जानेपर भी चूँकि उसकी दृष्टिमें यथार्थ बात है तो वह उत्तर देकर अपना निभाव कर लेगा। जैसे न्यायालयोंमें किसी घटनाकी यथार्थता जाननेके लिए अनेक विकल्प करके पूछा जाता है जब यह घटना हुई तो तुम्हारा मुख किस तरफ था, किस जगह खड़े अथवा बैठे थे- उस समय तुम्हारे सामने कौन था ? सूर्य तुम्हारे किस बगल था, कितने बजे जे, उस समय कितने लोग थे, यों दसों बातें थोड़ी थोड़ी देर बादमें पूछते हैं। यदि घटना यथार्थ है तब तो वह सही उत्तर दे लेगा, और अगर घटना अयथार्थ है तो वह कहाँ तक उन दसों बातोंका उत्तर अविरोध पूर्वक दे पायगा, वह तो घबड़ा जायगा। कितने ही विकल्प किए जाने पर भी वह उस घटनाका निभाव नहीं कर सकता।

स्याद्वादसे ही समस्याओंका समाधान—युक्तियां और विकल्प तो ऐसे हैं कि किसी को भी बातके न सिद्ध कर पानेमें मजबूर किया जा सकता है। कोई पूछ बैठे कि यह बतावो कि तुम जिस जीभसे बोलते हो वह तुम्हारी है यह कैसे जाना ? यह जीभ तुमसे न्यारी है या तुमसे मिली है ? अगर तुमसे न्यारी है तो तुम्हारी जीभ क्या रही ? तुम्हारा बोलना क्या रहा। जीभने कुछ भी कहा, तुमने तो नहीं कहा। वह न्यारी है, तुम न्यारे हो। और, यदि जीभ और तुम एकमेक हो तो जैसे थूलमथूला तुम हो वैसी ही थूलमथूला जीभ हुई, फिर तो वह जीभ तुममें सर्वत्र समा जाना चाहिए। तो भिन्न अभिन्नकी बात उठाकर कितने ही विकल्प करके उस बोलने वाले की जबान बन्द कर दो। तो किसी भी प्रसङ्गमें स्याद्वादका सहारा लिए बिना विजय

नहीं हो सकती। अरे तुम्हारी जीभ भिन्न है क्योंकि तुम कहलाते हो ये पूरे सवा मनके शरीर वाले और जीव है एक छोटा सा अवयव इस कारणसे तुमसे जीभ न्यारी है, किन्तु तुम्हारे इन अङ्गोंका इस शरीरसे सम्बन्ध है ना? अङ्गोंके समूह बिना तो कोई शरीर नहीं होता सो जीभ अभिन्न है। धर्मापेक्षाओंकी दृष्टि लगावो तो सिद्ध कर लो।

तथाविध ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे स्पष्टता व अस्पष्टताकी सिद्धि — इस प्रसङ्गमें क्षणक्षय वादियोंने यह पूछा था कि अस्पष्टता ज्ञानका धर्म है यह सिद्ध तुम कैसे करोगे ? क्या उस हीके अस्पष्टत्वको उसके ही अस्पष्टत्वसे या स्वतः। दोनोंमें आपत्ति देनेपर आचार्यदेव समाधान कर रहे हैं कि जिस विधिको उठाकर अस्पष्टताका निराकरण किया, इस तरह सिद्धि नहीं है, किन्तु ज्ञान यह स्पष्ट है यह अस्पष्ट है यह क्यों बना ? इसकी सिद्धि और प्रकारसे है। वह प्रकार क्या है ? देखिये जीवका स्वभाव एक ज्ञानरूप ही है। किसी भी जीवकी ऐसी पहिचान करने जायेंगे तो ज्ञान धर्मसे ही पहिचान कर सकेंगे। उसमें जाननेकी शक्ति है और शक्तिका तो कोई प्रत्यक्ष करता नहीं, किन्तु उसकी वृत्ति देखकर, जान रहा है, हिल रहा है, भाग रहा है, खा रहा है, कुछ भी प्रवृत्तियां देखकर यह ज्ञान होता है कि इसमें ज्ञान है। जब यह विदित होता है कि इसमें ज्ञान है तब हम जानते हैं कि यह जीव है। जीवका स्वरूप ही ज्ञान है। ज्ञानके अतिरिक्त आत्माका हम और कुछ स्वरूप नहीं समझ सकते, ज्ञान लक्षण बिना पहिचाना ही नहीं जा सकता। यह आत्मा तो आत्मा ज्ञान-स्वभावी है, ज्ञानका काम जानना है। जाननेमें कोई सीमा अथवा शर्त नहीं हुआ करती है कि ऐसा हो तो हम जानें। लेकिन, अनादिकालसे आत्माके साथ जो ज्ञानावरण कर्मका भार लदा है, जो विषय कषाय आदिक आकांक्षावोंका भार लदा है उसके कारण इसका ज्ञान दब गया है, प्रगट नहीं हो रहा है, आवरण होनेसे वस्तुका प्रकाश नहीं होता। जैसे कोई यहाँ पर्दा डाल दिया जाय तो भीतर पदार्थ आवृत है, उसका अब प्रागट्य नहीं है, वह स्पष्ट नहीं है, लोगोंको नजरमें नहीं आता। आवरण हटा दिया जाय तो पदार्थ जाननेमें आ जाता है, इसी प्रकार आत्मामें ज्ञानावरणका एक आवरण लगा है, उस आवरणका जितना क्षयोपशम होता है, अलगाव होता है उतना ज्ञानका प्राकट्य होता है।

ज्ञानप्राकट्यका अन्तरङ्ग निमित्त ज्ञानावरणका क्षयोपशम—देखिये ज्ञानके प्रगट होनेमें मूल पद्धति यह है, इस मौलिक बातको न जाननेके कारण ज्ञानके विकासका कारण कोई लोग प्रकाश मानते हैं, प्रकाश न हो तो हम ये सब नहीं जान पाते, कोई लोग इन्द्रियको मानते हैं, इन्द्रियां न होती तो ये सब कैसे जान पाते। कोई लोग पदार्थका समूह मानते हैं। ये पदार्थ इतने जुटे न होते तो इनका ज्ञान कैसे होता, कोई सन्निकर्ष मानते हैं, यदि पदार्थका और इन्द्रियोंका सम्बन्ध न बनता तो कैसे जानते ऐसा मानते हैं पर उसकी सुधि कोई नहीं लेता है जो ज्ञानके विकासका वास्तविक

कारण है और जिसके न होनेपर यह प्रकाश भी धरा रहे ये इन्द्रियां भी बनी रहें, यह पदार्थोंका जमघट भी बना रहे तब भी ज्ञान नहीं होता। यहाँ हम आपके ज्ञानविकास का मूल कारण है ज्ञानावरणका क्षयोपशम और अन्तरङ्गमें उस प्रकारका आत्मा का प्रसाद।

आवरणप्रकृतियाँ– जितने प्रकारके ज्ञान हैं उतने ही प्रकारके ज्ञानावरण होते हैं। कर्म यद्यपि मूलमें ८ बताये हैं, पर उन ८ कर्मोंके भी और भेद होनेसे १४८ प्रकृतियाँ बतायी गई हैं पर उन १४८ प्रकृतियोंमें भी प्रत्येक प्रकृतिमें अनन्त प्रकृतियाँ पड़ी हुई हैं। जैसे ज्ञानावरणके सम्बन्धमें ५ भेद बता दिये—मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण। किन्तु मतिज्ञानमें जितने भेद पड़े हुए हैं उतने उसके यदि विकास नहीं है तो उतने ही आवरण हैं। जैसे अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा आदि ज्ञानावरण। घटको न जाना तो घटावग्रह ज्ञानावरण, चौकीको न जाना तो चौकीअवग्रह ज्ञानावरण। यों उन्हींके ईहाज्ञानावरण आदिक भी हैं। जितने पदार्थ हैं उतने सत् हैं उन सबको न जान सके उतने ही इसके आवरण होते हैं। तब कितना विस्तार हो गया कर्मका? अनन्त विस्तार हो गया।

ज्ञानावरण एवं वीर्यान्तरायके क्षयोपशमके प्रभावसे वर्तमान ज्ञानविकास—उन समस्त ज्ञानावरणोंमेंसे जिस ज्ञानावरणका क्षयोपशम बना है, जो कि आत्माके प्रसादसे निर्मलतासे बना करता है उतना ज्ञानका विकास होता है। ज्ञानके उत्पन्न होनेका मूल मर्म यह है इस समय। तो जैसे जितने पदार्थ हैं उतने पदार्थोंके जाननेके आवरण भी होते हैं, ज्ञान भी होते हैं। तो इसी प्रकार जानने की जो दो पद्धतियां हैं. स्पष्ट और अस्पष्ट। तो ऐसे भी सब आवरण दो दो प्रकारसे हैं – स्पष्टज्ञानावरण, अस्पष्टज्ञानावरण। उसका क्षयोपशम होता है व साथ ही उसके साथ वीर्यान्तराय कर्मका भी क्षयोपशम होता है तो जब स्पष्ट ज्ञानावरण और वीर्यान्तरायका क्षयोपशम विशेष प्राप्त होता है तो किसी ज्ञानमें स्पष्टता प्रसिद्ध होती है व किसी ज्ञानमें अस्पष्टता प्रसिद्ध होती है। मूल बात यहांसे चली तब कोई ज्ञान स्पष्ट बना और कोई ज्ञान अस्पष्ट बना। जब अस्पष्ट ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे और वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे ज्ञान बना तो अस्पष्ट ज्ञान बना। उसका प्रतिबन्धक ज्ञानावरण है। प्रतिबन्धक जब नहीं रहता है तो पदार्थ प्रकट हो जाया करता है। यह बात लोकमें भी सर्वत्र पहिचान ली जाती है। तो स्पष्टता किसका धर्म है? ज्ञान का धर्म है। कभी बोला भी जाय कि पदार्थ स्पष्ट हो गया, पदार्थका विशेषण बनाकर बोलेंगे तो ज्ञानके धर्मका पदार्थमें उपचार करके व्यवहार किया गया, ऐसा समझना चाहिए।

स्पष्टताके प्रति इन्द्रियके करणत्वकी असिद्धि—अब इस सम्बन्धमें

मीमांसक लोग यह कहते हैं कि नहीं, जो किसी ज्ञान द्वारा किसी पदार्थका स्पष्ट प्रतिभास हुआ, जो स्पष्टता विदित हुई वह स्पष्टता इन्द्रियसे उत्पन्न हुई। इन्द्रियके कारण उनको स्पष्ट जाना। उनके प्रति समाधान दिया जाता है कि यदि इन्द्रियसे ही स्पष्टता होती है इन्द्रिय स्पष्ट ज्ञान करती हैं तो इन नेत्रोंसे जब हम एक मील दूरकी चीज देख रहे हैं तो हमें वह अस्पष्ट क्यों समझमें आता ? इन्द्रिय तो वही हैं, इन्द्रियसे यदि स्पष्टता उत्पन्न होती है तो दूरके पदार्थ देखनेमें भी स्पष्ट प्रतिभास होना चाहिए। तथा उल्लूको दिनमें क्यों नहीं स्पष्ट ज्ञान होता ? उसकी आंखें जैसी रातमें हैं वैसी ही तो दिनमें भी हैं। इन्द्रियसे स्पष्टता मान लेनेपर ऐसी अनेक बातें पूछी जा सकती हैं।

इन्द्रियके उपघातके कारण इन्द्रियजज्ञानमें अस्पष्टताकी असिद्धि-- अब इस सम्बन्धमें यदि यह कहो कि स्पष्टताको उत्पन्न करने वाली जो आँख है वह यदि अत्यन्त दूर देशकी बातको देखे तो दूरकी चीजके द्वारा ये इन्द्रियाँ दब गयीं, उपहत हो गयी, इनपर कुछ दोष पड़ गया। दूरकी चीज देखनेमें, फिर दृष्टि नहीं लगती है और उल्लूकी आँखोंको सूर्यकी किरणोंने दबा डाला जिस कारणसे उल्लूको दिनमें स्पष्ट नहीं दिखता। तब इसपर उनसे पूछा जा रहा है कि उस कारणने इन्द्रियका उपघात किया या इन्द्रियकी शक्तिका ? किसको दबाया ? यदि कहो कि इन्द्रियको दबाया तो यह प्रत्यक्ष विरुद्ध बात है, इन्द्रियाँ तो ज्योंकी त्यों साफ पड़ी हैं। दूरका पदार्थ देखा तो वही आंखें हैं जिसपर कोई पर्दा भी नहीं पड़ा है और उल्लूकी भी आंखें वही हैं चाहे दिनमें देखे चाहे रातमें। उस इन्द्रियका स्वरूप ज्योंका त्यों बराबर नजरमें आ रहा है।

इन्द्रियशक्तिके उपघातका अर्थ भावेन्द्रियावरण---यदि कहो कि इन्द्रिय का उपघात नहीं किया किन्तु इन्द्रियकी शक्तिका उपघात किया तो वही बात योग्यता वाली सिद्ध हो गयी कि इन्द्रियमें जो जाननेकी योग्यता है, भावेन्द्रियनामक जो इन्द्रिय ज्ञानावरणका क्षयोपशम है उसके कारण पदार्थ जाना जाता है तो जहाँ स्पष्ट ज्ञान करनेका क्षयोपशम है वहाँ स्पष्ट ज्ञान करनेका क्षयोपशम है वहां अस्पष्ट होता है। इन्द्रियकी शक्ति एक भावइन्द्रियनामक क्षयोपशमके सिवाय और कुछ नहीं है। वह इन्द्रियकी शक्ति क्या है ? जिस शक्तिसे हमने पदार्थको स्पष्ट जाना। कल्पना तो करो जरा, उसे इन्द्रियकी शक्ति कहें या ज्ञानकी शक्ति कहें। ज्ञानरूप ही तो भाव इन्द्रिय होता है तो भाव इन्द्रियका ही नाम ज्ञानकी शक्ति है, और भाव इन्द्रियनामक इन्द्रिय से स्पष्टता होती है, ऐसा माननेपर तो जैन सिद्धान्तकी ही सिद्धि हुई कि जैसी योग्यता है, जैसा क्षयोपशम है वैसा ज्ञान प्रकट होता है।

अपने अपरिचयमें विडम्बना—इस प्रकरणमें प्रत्यक्षके लक्षणकी मीमांसा की गई है। प्रत्यक्षका लक्षण क्या है ? जो विशद ज्ञान हो उसे प्रत्यक्ष कहते हैं।

जब विशद ज्ञानपर विचार चलने लगे कि विशदता स्पष्टता ज्ञानमें किस प्रकारसे आया करती है । तो सुननेमें आलस्य आ जाता है । क्यों आ जाता है ? देखिये ! सब बातें हैं तो अपने आपकी, अपने ही स्वरूपकी ये चर्चायें हैं किन्तु अपने आपके स्वरूपका कुछ परिचय न होनेसे अपनी ही बात अपनी समझमें नहीं आती । जैसे कोई आवेशी वक्ता ऐसा भी होता है कि जिसका व्याख्यान श्रोताओंको सुननेकी रुचि तो नहीं है, खाली यों ही बैठे रहते हैं श्रोताजन, वे तो चाहते हैं कि अब यह कुछ भी न बोले तो अच्छा है, पर वह वक्ता यह समझ रहा है लोगोंको जो कुछ हम बोल रहे हैं बहुत पसंद है । यद्यपि वे श्रोताजन कभी कभी मखौल वाली ताली भी बजा देते हैं न सुननेकी वाञ्छा होनेके कारण, पर वह वक्ता यही समझता है कि सभी लोग जो कुछ हम बोल रहे हैं उसको सुनकर बहुत खुश हो रहे हैं । और, वह अपने व्याख्यान को और भी बढ़ाता जाता है । वह भावुक वक्ता अपने बारेमें कुछ भी निर्णय नहीं कर पाता । ऐसे ही नासमझ वक्ताकी तरह ये संसारके मन वाले लोग भी अपने स्वरूपकी सुधसे रहित हैं, जिससे अपनी भी बात अपनी समझ में नहीं आती । जो बात स्पष्ट है वह भी ज्ञानसे बाहर हो जाती है, किन्तु बाह्य दृष्टिके कारण अपनी चतुराई अधिक माना करता है । इसका कारण क्या है ? इसका कारण यह है कि हमारे चित्तमें बाह्यपदार्थोंके प्रति प्रेमकी वासना अधिक बनी हुई है और किसी समय यद्यपि उस बाह्य वस्तुका प्रेम सामने स्पष्ट नजर आ रहा है, ख्याल भी नहीं हो रहा है लेकिन वासना इस प्रकार पड़ी हुई है कि वह संस्कार हमारे ज्ञानको इतना बिगाड़ रहा है कि हम अपने स्वरूपकी सुध लेनेके लिए, स्वरूपकी बात जाननेके लिए रुचि भी नहीं करते और न अपनी प्रतीति बनाते हैं । यह सब बाह्यपदार्थोंसे प्रेम होनेके, परिग्रहमें आशक्ति होनेका संस्कार है, उस संस्कारका यह फल है कि यह आलसी बना हुआ है ।

आलस्यका स्वरूप—देखिये ! आलस्य बताया गया है रत्नत्रयमें प्रवृत्ति न करनेमें । कोई भी पुरुष बहुत दौड़-धूप करता है, जगह जगह जा कर माल खरीदता है और अनेक प्रकारके कष्ट भोगकर बहुत बड़ा व्यापार करता है तो लोग कहते हैं कि इसके कुछ भी आलस्य नहीं है, पर ज्ञानी कहता है कि वह महा आलसी है । मोक्ष मार्गमें उत्साह न होनेको, प्रवृत्ति न होनेको आलस्य कहा गया है । तो यह समझ लीजिए कि हम लोगोंका यह प्रमाद है, आलस्य है जो हमारी दृष्टि हमारे ही स्वरूप पर टिक नही पाती और कितनोंको तो उसका अवलोकन भी नहीं होता ।

जगतकी असारताका परिचय—भैया ! अधिक न बने तो कमसे कम इतना तो हम आप मनुष्य हर एक कोई कर सकता है क्योंकि थोड़ा बहुत परिचय सबको है कि संसार असार है, इसमें कोई किसीका नही है, सभी स्वार्थके साथी हैं, सभी दूसरों को धोखा देते हैं, हमारा कोई वास्तवमें मित्र नहीं है, इतनी बातोंका

ज्ञान तो सभी मनुष्योंको है, क्योंकि इस जीवनमें इस स्वार्थभरी दुनियामें घटनायें ऐसी दसों बीसों घट चुकी होंगी। उस समय चाहे विचार न किया हो, पर तत्काल तो यह विचार किया ही होगा कि सब धोखा है, कोई किसीको चाहने वाला नहीं है, जब इतना बोध है हम आप सभीको तो इतनेसे ही अपना काम निकाल सकते हैं। न भी तत्त्वस्वरूपका अधिक ज्ञान हो, न भी सिद्धान्तके सूक्ष्म कथनका ज्ञान हो, पर जितना ज्ञान है उतना ही बहुत काफी है। इतना तो जान ही लिया गया कि समस्त बाहरी पदाथ, समस्त ये जीव जिन्हें हम स्त्री पुत्र भी कहते हैं ये सब अपने अपने स्वार्थके हैं और अपने अपने कर्मोंके साथी हैं, इतने ही ज्ञान द्वारा हम कल्याणका उपाय बना सकते हैं।

पदार्थोंकी स्वरूपतः स्वार्थवृत्ति– भैया! यह कोई ग्लानिकी बात नहीं है कि यह सोच लिया जाय कि ये सब स्वार्थी हैं, चाहे कोई कितना ही घरमें भला हो, घरभरका बड़ा संरक्षण करता हो, चिन्ता रखता हो। अपने शरीरकी, अपने खाने पीने की चाहे कोई सम्हाल न करता हो, पर घरमें रहने वाले सन्य सभी लोगों की बड़ी सम्हाल करता हो इतनेपर भी वह बड़ा स्वार्थी है, स्वरूप ही है ऐसा। इसमें कोई ग्लानिकी बात नहीं है। प्रत्येक वस्तुका ऐसा ही स्वरूप है कि वह अपने आपमें अपना ही परिणमन करे। कोई वस्तु किसी दूसरी वस्तुका परिणमन नहीं कर सकती। तो स्वार्थ मायने स्वका अर्थ, स्वका प्रयोजन। जब चित्तमें कोई कषाय उत्पन्न होती है तो उसके मिटानेके लिये वह प्रयत्न करता है, बस यही उसका स्वार्थ है। बड़े से बड़े पुरुष भी जब किसी दूसरे दुःखी पुरुषको देखकर दुःखी हो जाते हैं तब अपनी उस दुःखका वेदनाको मेटनेके लिये उस दुःखी पुरुषको भोजन वस्त्रादि देकर उसकी वेदनाको मिटाते हैं। तो इसमें भी उसका स्वार्थ ही रहा। तो ऐसा समझकर किसीसे ग्लानि न करना चाहिए, पर प्रत्येक वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है।

समागमकी असारताके परिचयसे कल्याणलाभकी सुगमता– जब ऐसा समझ लिया गया कि प्रत्येक जीव स्वार्थी है, उनके सम्पर्कसे हमें धोखा ही होता है तो इतना जाननेके बाद जरा हिम्मत बना लो, सबकी उपेक्षा कर दो, सबको भूल जावो, किसीको भी अपने चित्तमें स्थान मत दो, ऐसी बात बनानेमें यदि साहस किया और यह स्थिति यदि किसी प्रकार बन गयी तो अपने पापमें वह प्रकाश मिलेगा जो सब समाधान दे देगा कि जगतमें उत्तम तत्त्व क्या है? आत्माका स्वरूप क्या है? शान्ति आनन्द किस स्थितिमें है? यह आत्मा क्या है? सबका उसे स्पष्ट बोध हो जायगा। तो अब देख लीजिये! कि कल्याणकी बात प्राप्त करनेके लिये सबमें उतना ज्ञान मौजूद है जिस ज्ञानका यदि उपयोग करें तो हम लोग बिना विशेष शास्त्रज्ञानके भी अपने आपसे यह निर्णय बना सकते हैं और तब विदित होगा कि यह ज्ञानस्वरूप मैं कितना स्पष्ट हूँ। उसी विशदज्ञानके स्वरूपके विकासोंकी चर्चा चल रही है।

अब यहाँ इतनी बात सिद्ध की गई कि जो विश॰ ज्ञान स्वभावमें हो वह ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाता है।

ज्ञानकी स्पष्टताका तात्पर्य––अब तक यह सिद्ध किया गया है कि स्पष्ट और अस्पष्ट ज्ञान हुआ करता है पदार्थ नहीं होते। और जो स्पष्ट ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष है। जो अस्पष्ट ज्ञान होता है वह परोक्ष है। इसपर एक जिज्ञासा उत्पन्न हुई है कि ज्ञानकी स्पष्टताका तात्पर्य क्या है? ज्ञानकी स्पष्टता कहते किसे हैं? तो स्पष्टता का लक्षण बतानेके लिये सूत्र कहते हैं :—

"प्रतीत्यन्तराव्यवधानेन विशेषवत्तया वा प्रतिभासनं वैशद्यम्।" २–४ ॥

ज्ञानान्तरकी आड़ बिना होने वाले प्रतिभासमें वैशद्यरूपता––इस सूत्रमें स्पष्टताका लक्षण कहा गया है। इस सूत्रका भाव जो भी आगे कहेंगे वह कठिन नहीं है। साथ ही उसमें बहुतसे तत्त्व अपने आत्माका प्रासाद बढ़ाने वाले मिलेंगे। वैशद्यके लक्षणमें कहते हैं कि अन्य ज्ञानके व्यवधान बिना जो प्रतिभास होता है उसे वैशद्य कहते हैं। वैशद्य कहो या स्पष्टता कहो, एक ही बात है। विशद शब्दसे बनता है वैशद्य और स्पष्ट शब्दसे बनता है स्पष्टता। तो स्पष्टताका लक्षण बताया है कि जिस ज्ञानसे जाना जा रहा है उस ज्ञानका अन्य ज्ञानके व्यवधानसे न हो तो स्पष्टता है। जैसे इसी समय थोड़ा दृष्टान्त देकर बता दें, आँखोंसे देखा झट जान गये, इसमें किसी दूसरे ज्ञानकी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी, किसी ज्ञानके हाथ नहीं जोड़ने पड़े कि कोई अन्य ज्ञान और बने तब हम सामनेकी चीजको जान पायें। ज्यों ही आंखें खोलीं कि पदार्थ जान गए। इसके बीचमें किसी अन्य ज्ञानका उदय नहीं है और जब अनुमान ज्ञान करते हैं, धूम देखकर अग्निका ज्ञान किया तो अग्निका ज्ञान करना अनुमान कहलाता है मगर उस अग्निका ज्ञान करनेमें धूमका ज्ञान करना पड़ा। तो धूमके ज्ञानका उसमें व्यवधान आ गया, सीधा ही अग्निका ज्ञान नहीं बना वहाँ पहिले धूम का ज्ञान किया और फिर तर्क याने व्याप्तिका ज्ञान किया। जहाँ जहां धुवाँ होता है वहां वहां अग्नि होती है, इस प्रकारका ज्ञान हुआ तब जाकर अग्निका बोध हुआ। तो आप जान गए होंगे कि अग्निका ज्ञान कराने वाले अनुमान ज्ञानके बननेके लिए अन्य ज्ञानोंकी जरूरत पड़ी, उनकी बात जोही, उनका व्यवधान बना। तो अनुमान ज्ञान परोक्ष ज्ञान हुआ, स्पष्ट ज्ञान हुआ। तो इसी दृष्टिको लेकर इस क्षलणका भेद समझियेगा।

अव्यवधानका भाव––अन्य ज्ञानोंके व्यवधान बिना जो प्रतिभास हो उसे वैशद्य कहते हैं। और, दूसरी बात भी कहते हैं। विशेषताके साथ प्रतिभास होनेको वैशद्य कहते हैं। जहां कहीं भी किसी वस्तुके लिए व्यवधानरहितकी बात कही जाय तो तुल्य जातिकी अपेक्षा कहा जाता है। जैसे वर्णन है कि स्वर्गोंके पटल ऊपर हैं, ना, जो ६२, ६३ पटल हैं और ऊपरके भी विमान वैमानिक देवोंके तो उस अधरमें

है, कोई ऐसा कह बैठे कि एक पटलके ऊपर दूसरा पटक कहाँ रखा, उसके बीच तो बहुत आकाश पड़ा हुआ है या अन्य सूक्ष्म स्कंध पड़े हुए हैं तो अन्य जो कुछ बीचमें है उसको नजरसे बाहर कर देते हैं। पटलोंकी बात कह रहे हैं। तो एक पटलके ऊपर दूसरा पटल है, उसके ऊपर अन्य पटल हैं। तो जिसकी बात कह रहे उसी जातिकी बात उसके बाद निहारना चाहिए। बीचमें क्या पड़ा है उसे मत निहारो! जैसे कोई एक कमरा है और उसके बाद फिर जीना है और जीनेके बाद फिर कमरा है। कोई यदि यह कह दे कि देखो इस कमरेके बादके कमरेमें अमुक चीज रखी है! तो वह कहेगा कि इस कमरेके बाद तो वह कमरा ही नहीं है बीचमें जीना पड़ा है, तो जीना की बात नजरसे दूर कर दी जाती है। जब कमरेकी बात कही जा रही है तो कमरा जातिका दूसरा पदार्थ नजरमें लिया जाता है। तो अन्य ज्ञा का व्यवधान नहीं है तो इस अव्यवधानमें तुल्य जातिकी बात ली गई अर्थात् अन्य ज्ञानका व्यवधान न होना चाहिए।

ज्ञानान्तरव्यवधानरहितताका उदाहरण—अन्य ज्ञानके अव्यवधानका क्या भाव है? सो इसे फिरसे थोड़ा दृष्टान्तमें बताते हैं। कानोंसे शब्द सुनते हैं, सुन लिया, झट जान लिया। उस सुननेके बीचमें कुछ हमें और युक्तियाँ नहीं सोचनी पड़तीं अन्य ज्ञानोंकी आवश्यकता नहीं पड़ती। कानोंमें शब्द आये, झट जान गए तो वह प्रत्यक्ष हुआ स्पष्ट हुआ, और किन्हीं पर्यायभूत चीजोंके जाननेके लिए स्वर्ग है, नरक है, कुछ भी जाननेके लिए हमें बीचमें कितने ज्ञान बनाने होते है तब उसका ज्ञान होता है। तो अन्य ज्ञानोंके व्यवधान बिना अथवा विशेषरूपसे जो प्रतिभास हो उसे वैशद्य कहते हैं। ज्ञानकी स्पष्टताका प्रकरण चल रहा है कि ज्ञान स्पष्ट रहता है कोई कोई! तो क्या रहता है? उसमें स्पष्टता क्या आयी? तो कितनी सुन्दर युक्ति के साथ नीतिके अनुसार बताया जा रहा है। अभी किसीसे कहें कि तुम स्पष्टकी व्याख्या करो! स्पष्ट कहते किसे हैं? तो यह बात प्रायः किसीको न सूझेगी कि जिसमें अन्य ज्ञानका व्यवधान न हो उस ज्ञानको स्पष्ट कहते हैं। पर यहाँ दार्शनिक दृष्टि कितनी गम्भीर है। कैसा लक्षण बनाया है कि जो लक्षण न तो परोक्षमें जाय और न किसी प्रत्यक्षमें जाय! समस्त प्रत्यक्षोंमें वैशद्य है और किसी भी परोक्षमें वैशद्य नहीं है।

ईहाज्ञानमें अवग्रहज्ञानका व्यवधान बतानेकी शङ्का—अब यहां एक शंका की जा रही है कि मतिज्ञानके ४ भेद बताये गये - अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। पहिले एकदम किसी पदार्थको देखा तो उसका जो कुछ थोड़ासा ज्ञान हुआ उसे अवग्रह कहते हैं, उसके बारेमें फिर कुछ और विशेष ज्ञान हो आकांक्षापूर्वक जैसा तो ईहा ज्ञान हुआ, फिर उस ज्ञानमें निश्चय बने सो अवाय ज्ञान हुआ, और फिर उसे कभी भूल न सके, ऐसी धारणा रह जाय तो धारणा ज्ञान हुआ। ऐसे ज्ञान हम आप

रोज करते हैं। किसी वस्तुको देखा और सामान्यरूपसे जाना कोई आदमी आ रहा है यह अवग्रह हो गया, यह तो अमुक चंद है यह ईहा हो गया। यह तो अमुक चंद ही है यह अवाय हो गया। और, इसे अब भूल नहीं सकते, ऐसा मनमें अवधारण कर लिया तो धारणा हो गया। इस पद्धतिसे सबके ज्ञान हुआ करता है। यहां शंकाकार यह शङ्का कर रहा है कि अवग्रह तो ठीक जान लिया, उसमें अन्य ज्ञानका व्यवधान नहीं पड़ा है। जिस ज्ञानसे जाना उसी ज्ञानसे सीधा जान लिया। किन्तु जब ईहा ज्ञान होता है तो उसके बीचमें अवग्रह ज्ञान तो पड़ता है, अवग्रह ज्ञानका व्यवधान हो गया। तब ईहा ज्ञान अस्पष्ट हो बैठेगा, फिर प्रत्यक्ष न रहेगा। देखिये ! सिद्धान्तकी बातमें शङ्काकारने किस ढङ्गकी शङ्का बनायी है ? अवाय ज्ञान जब होता है तो उसमें अवग्रह और ईहा दोका व्यवधान आ गया। जब इन दोका रूप बने तो अवग्रह ज्ञान बने। फिर यह कैसे स्पष्ट कहला सकेगा।

ईहाज्ञानमें ज्ञानान्तरव्यवधानरहितता—ईहाके प्रति व्यवधान बताकर अस्पष्टताकी शङ्काका उत्तर देते हैं कि भाई ! अवग्रहसे जो जाना सो ठीक जान लिया, अब ईहासे जो जान रहे हैं सो अवग्रह ज्ञानको उत्पन्न करने वाले साधनसे नहीं जान रहे, इस ईहा ज्ञानके समय और ही इन्द्रियका व्यापार होता है उससे हमने सीधा ईहा ज्ञान किया। ज्ञानका व्यवधान नहीं होता, ज्ञानका व्यवधान तो तब हो जब अवग्रहका सम्बन्ध बनाकर उसकी दृष्टि रखकर फिर ज्ञान करें तब ईहाका व्यवधान कहलायगा। पहले आँखोंसे जाना अवग्रह, और अब इन आँख आदिकके अन्य व्यापारों से जाना हमने ईहा—यह अमुक चंद है, तो इसमें पूर्वज्ञानका व्यवधान नहीं हुआ। उसकी अपेक्षा ले करके सिद्ध नहीं हुआ। एक ही यह मतिज्ञान अवग्रह आदिक अतिशय वाले नवीन नवीन चक्षु आदिक के व्यापारोंसे उत्पन्न होता है और स्वतंत्र स्वतंत्र रूपसे अपने अपने विषयको लेता है इस कारण ज्ञानान्तरका व्यवधान नहीं है। तो यहाँ समाधान यह दिया है कि अवग्रह ज्ञान करते समय जो चक्षुका व्यापार होता है उस व्यापारसे अवग्रह जाना तथा ईहा ज्ञान करते समय चक्षुका या मनका अन्य व्यापार होता है प्रथम हुए चक्षुके व्यापारकी अपेक्षा रखकर ईहा ज्ञान नहीं होता। अन्यथा तो इससे अवग्रह ज्ञानकी अपेक्षा सिद्ध हो जाती। ईहा ज्ञानमें अब अवग्रह ज्ञानसे ऊपरकी बात एक स्वतन्त्र रूपसे समझनेकी है। चूँकि यह सब इन्द्रिय और मनके निमित्तसे ज्ञान चल रहा है इसलिये ये सब मतिज्ञान हैं और श्रुतज्ञानका लक्षण इसमें घटित नहीं होता इसलिये ये सब मतिज्ञान कहलायेंगे।

भेदोंकी परस्परनिरपेक्षता—एक बात और समझनेकी है। जैसे किसी भी चीजके भेद किए जाते हैं तो उन भेदोंमें परस्पर अपेक्षा नहीं रहती। अन्यथा वह भेद न कहलायेगा, वह अङ्ग कहलायेगा। अङ्गमें और भेदमें अन्तर है। मतिज्ञानके ४ भेद हैं, इसका कारण है कि ये चारों स्वतंत्र हैं, परस्पर एक दूसरेकी अपेक्षा लेकर

नहीं है। जैसे जीवके दो भेद हैं—एक मुक्त और एक संसारी। तो क्या यह नहीं कहा जा सकता कि मुक्त अपने घरके, संसारी अपने घरके। अरे तो ऐसी स्वतन्त्रता न माननेपर तो भेद ही न बन सकेंगे। यह प्रश्न तो नहीं किया जा सकता। भेद होते हैं और वे सब स्वतन्त्र होते हैं। मतिज्ञान के ४ भेद हैं—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। और, इन चारोंके विषय स्वतन्त्र हैं। इन चारोंके विषयके ज्ञानके लिए जो साधन नवीन नवीन बनते हैं। इससे यह सिद्ध किया गया कि अनुमान ज्ञानकी तरह ईहा आदिक ज्ञानों में अन्य ज्ञानोंकी अपेक्षा नहीं रहती है वे सब न्यारे न्यारे ज्ञान हैं।

ईहाज्ञानकी स्वतन्त्रताका समर्थन—जैसे कोई पुरुष किसी कामको कर रहा है, मान लो चार दिनमें वह काम बनेगा। पहिले दिन काम कर चुका, अब उसके बादका काम दूसरे दिन किया जा रहा है। तो दूसरे दिनका जो काम है पुरुषार्थ है, श्रम है वह पहिले दिनके कामकी अपेक्षा नहीं रखता। अब वह एक नये व्यापारसे दूसरे दिनका काम हो रहा है, तो एक पदार्थके विषयमें सामान्यरूपसे कुछ जाना वह निपट चुका। अब उसके बाद एक विशेषरूपसे जाना जा रहा है। यह एक नया काम है और मजबूत व्यापार है। तो अनुमान की तरह ईहा आदिक ज्ञानोंमें अन्य ज्ञानोंका व्यवधान नहीं हुआ करता, पर अनुमान आदिककी प्रतीति तो साधनोंकी प्रतीतिके द्वारा ही उत्पन्न होती है। जब वह अपने विषयमें लगता है, उस समय भी जिस समय अग्निका ज्ञान किया जा रहा है तो धूमकारकाल रखकर धूमका सम्बन्ध जोड़कर ज्ञान किया जा रहा है इसलिए अनुमान ज्ञानमें ऐसे ज्ञानकी अपेक्षा रहती है पर ईहाज्ञानमें अन्य ज्ञानोंकी अपेक्षा नहीं रहती। यह बात अलग है कि अवग्रहसे हमने जाना था, अब इसके बाद हम ईहाज्ञानसे जान रहे हैं, पर वे अंश प्रथक् प्रथक् हैं, विषय न्यारा न्यारा है। ईहाज्ञान अवग्रहकी अपेक्षा नहीं रख रहा है वह हुआ है चूंकि स्वतन्त्र सो, अब ईहाज्ञान अपने विषयको स्वतन्त्रतासे अपनी साधनासे जान रहा है, तो इस प्रकार यह निर्दोष तत्त्व हो गया कि प्रत्यक्षका लक्षण वैशद्य है। जिस ज्ञानमें स्पष्टता हो उसे प्रत्यक्ष कहते हैं।

दार्शनिक शैलीमें युक्तिकी प्रधानता सिद्धान्तकी बात दार्शनिक दृष्टिसे सिद्ध की जा रही है और आप इतना यह निरखेंगे कि सिद्धात ग्रन्थोंमें सिद्धान्तकी बात सुनना, मानना एक श्रद्धा और भक्तिपूर्वक होती है। श्रद्धासे जान लिया, भक्ति से जान लिया पर दार्शनिक दृष्टिमें सिद्धान्त बिगड़े तो बिगड़ जाय, ठीक रहे तो रहे, उसकी कुछ भी परवाह न करके युक्तियोंसे न्यायसे सिद्ध किया जाता है। एक शैली होती है। जैसे कोई वैज्ञानिक या कोई इतिहासज्ञ कोई ऊँचा लेखक लेख लिखे तो जो निष्पक्ष हुआ करता है वही ऊँचा लेखक कहलाता है। यह भी बात जाननेकी है। जो ऊँचे लेखक होते हैं उनमें इतनी गम्भीरता होती है कि वे खोज निबन्धके लिखते समय अपने कुल और धर्मका भी पक्ष नहीं रखते। तो किसी खोजके प्रसङ्गमें कोई

महानिबन्ध बना रहा है उस प्रसङ्गमें अनेक ग्रन्थोंसे युक्तियोंको खोजकर यदि खोज ऐसी आती है कि जिससे उसके कुलागत धर्मका खण्डन होता है तो वहां वह जरा भी नहीं हिचकिचाता और वह वहाँ उसे पुष्ट करता है, किसी दूसरे धर्मका, सिद्धान्तका मण्डन होता है तो उस बातको कहनेमें वह लाज नहीं रखता है। कुछ न्यायसे कुछ दार्शनिकताके कारण, कुछ उच्च विचारोंके कारण ऐसी पद्धति बन जाती है। तो दार्शनिक ग्रन्थोंका इस प्रकारका आशय होता है। यहां प्रत्यक्षका लक्षण कहा है वैशद्य। जो स्पष्ट ज्ञान हो वह प्रत्यक्ष ज्ञान है और स्पष्टताका लक्षण किया गया है कि अन्य ज्ञानोंकी आड़ बिना उस ही ज्ञानसे जो स्पष्ट प्रतिभास लगे उसे कहते हैं स्पष्ट ज्ञान। यह स्पष्टताका लक्षण समस्त प्रत्यक्षोंमें घटित होता है। इस कारण अव्याप्ति दोष भी सम्भव नहीं और जो ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं हैं उन ज्ञानोंमें किसी भी ज्ञानमें यह लक्षण घटित नहीं होता, इस कारण अतिव्याप्ति नहीं है।

लक्षणके दोष—लक्षणके तीन दोष होते हैं—अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भवा। कोई मनुष्य किसी का लक्षण बना रहा हो तो हम यह कह जाते कि यह बिल्कुल सच बोल रहा है, इसका लक्षण सही है। लक्षणमें यदि ये तीन दोष न आयें तो सही मान लें। यदि लक्षणमें इन तीन दोषोंमें एक भी दोष है तो वह सही नहीं है। जैसे किसीने लक्षण बनाया, गायका लक्षण क्या है भाई ? तो वह कहता है कि गायका लक्षण सींग है। जरा जल्दी सुननेमें यह अच्छासा लगता है कि ठीक ही तो कह रहा है, पर यह लक्षण सही नहीं है। गायका लक्षण क्या है ? गायकी पहिचान क्या है ? तो उसने बताका सीग तो गायया लक्षण सींग कहा तो क्या यह सही लक्षण है ? सही नहीं है, क्योंकि सींग तो भैंसके भी होते हैं, बैलके भी होते हैं। फिर तो बैल तथा भैंस आदिकके भी सींग देखकर यही कह देना चाहिए कि यह गाय है। पर ऐसा तो कोई नहीं कहता। तो यह सही लक्षण नहीं रहा। वह तो अतिव्याप्ति हो गया। किसीसे पूछा कि अच्छा बतावो पशुका लक्षण क्या है ? तो कोई बोला कि पशुका लक्षण सींग है। तो ऐसा सुननेमें तो कुछ भलासा लगता कि ठीक ही तो कह रहा है। पशुवोंके सींग तो हुआ करते हैं, रोज रोज देखते भी हैं और किसी मूर्ख मनुष्यको कह भी देते हैं कि यह तो बिना सींगका जानवर है। तो प्रसिद्धि भी कुछ ऐसी ही है, पर यह उसका सही लक्षण नहीं है। क्योंकि खरगोश, गधा, घोड़ा आदि बहुतसे पशु बिना सींगके भी हुआ करते हैं। तो इस लक्षणमें भी दोष है और अगर पूछा जाय कि बतावो मनुष्यका लक्षण क्या है ? और वह कह दे कि मनुष्यका लक्षण सींग है, तो यह तो बिल्कुल ही असम्भव है। मनुष्यके सींग न कभी हुए, न हुआ करते और न होंगे। तो लक्षण वह निर्दोष कहलाता है जिसमें अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भव ये दोष न आयें।

आत्माका निर्दोष लक्षण—जरा आत्माकी बात सुनो ! आत्मा निर्दोष

लक्षण चैतन्य है। किसी ने पूछा कि आत्माका लक्षण क्या है ? कोई कहे कि आत्मा का लक्षण अमूर्तत्व है, जो अमूर्त हो, जिसमें रूप, रस गंध, स्पर्श न हो उसे आत्मा कहते हैं। ऐसा सुननेमें भला लगेगा कि सही तो बात है ! आत्मामें रूप, रस, गंध, स्पर्श कहां होते हैं ? लेकिन यह लक्षण सही नहीं है। अमूर्त तो आकाश भी है, धर्म द्रव्य है अधर्म द्रव्य है, काल द्रव्य है, ये भी जीव कहलाने लगेंगे, तो आत्माका लक्षण अमूर्त कहना अतिव्याप्ति दो से दूषित है। आत्माके अलावा अन्य अलक्ष्योंमें भी यह लक्षण चला गया। किसीने कहा कि आत्माका लक्षण है रागद्वेषादिक। जिसमें राग-द्वेष हों, जो भला बुरा पहिचाने उसे आत्मा कहते हैं। कुछ जल्दीमें अच्छासा लगेगा, लेकिन यह लक्षण भी दूषित है। जो मुक्त जीव हैं, परमात्मा हैं, ऊँचे योगिराज हैं, उनमें रागद्वेष कहाँ हैं ? और हैं वे जीव। तो सभी जीवोंमें रागादिक लक्षण नहीं हैं अतः यह अव्याप्ति दोषसे दूषित हुआ। कोई कहदे कि आत्माका लक्षण है पृथ्वी, जल अग्नि, वायुका इकट्ठा होना तो यह असम्भव हो गया, क्योंकि ऐसा होता ही नहीं है। तो यहाँ वैशद्य जो लक्षण कहा है, वह तीनों दोषोंसे रहित है। स्पष्ट ज्ञान है, वह प्रत्यक्ष है और अस्पष्ट ज्ञान है वह परोक्ष है।

ज्ञानका परिचय—देखिये ! इस प्रसङ्गमें एक यह भी बात समझ लें कि ज्ञान ज्ञानको जानता है तो ज्ञानकी दृष्टिसे तो स्पष्ट ज्ञान स्पष्ट हुआ करता है पर बाह्य पदार्थोंके सम्बन्धमें किसी तरहसे जानकारी की गई उसकी अपेक्षा देखा जाय तो कोई ज्ञान स्पष्ट होता कोई अस्पष्ट होता। ज्ञानके स्वरूपके बारेमें अधिकाधिक समझ आ जाय तो ज्ञानका परिचय ही विशेष बढ़ता है। वहाँ प्रयोजनीभूत ज्ञान उतना ही बताया है कि अपने बारेमें समझलो कि यह मैं आत्मा एक ज्ञानस्वरूप हूं, सहज ज्ञान-रूप हूँ, सदा से जो रहा आया हो, अनन्त काल तक जो रहेगा उस ज्ञानस्वरूप मैं आत्मा हूँ, इतना ही बोध कर लिया कि कल्याणकी दिशा मिल जाती है। ठीक है, पर साथ ही जिसको इस बारेमें अधिक रूपसे ज्ञान होगा, पर्यायोंका भी ज्ञान होगा तो वह ज्ञानकी प्रकर्षता इसके इस प्रयोजनमें बाधक नहीं, किन्तु विशेषरूपसे साधक ही होती है। हमें अपने ज्ञानकी परीक्षा करनी चाहिए। ज्ञानके स्वरूपकी परख करें, निरीक्षण करें, अनुभवन करें, यह तो एक काम पड़ा हुआ है।

मानवजीवनमें सारभूत कर्तव्यका निरीक्षण—भैया ! मनुष्य पर्याय पाकर बताईये कौनसा काम करना है जो सर्वोत्तम हो। श्रावक धर्म पाया, साधर्मी जनोंका मिलन पाया। ये सब कठिनसे कठिन समागम पाये तो हम इस मनुष्य भवको सफल बना सकें ऐसा एक कार्य करना है। धन वैभवका संचय कर करके, उसपर ही दृष्टि दे करके जरा यह निर्णय तो कर लो कि इससे कौनसा सारभूत लाभ प्राप्त हो जायगा ? अपनी इज्जत बना बनाकर जो मर चुके हैं उनपर दृष्टि देकर यह निर्णय कर लो कि यहाँकी इज्जत नामवरी ये मेरे लिए कोई सारभूत नहीं है। जिनके बहुत

सी संतानें हैं उनकी उलझनोंको देखकर यह निर्णय कर लो कि संतानोंका समागम होना भी कोई सारभूत बात नहीं है। स्नेह बढ़ाना, परिचय बढ़ाना, ये सारी बातें एक स्वप्नके समान असार हैं। मनुष्य भवकी सफलता तो एक आत्मानुभवसे ही हुई समझिये। आत्मानुभव बनता है तो हम आपकी जिन्दगी सफल है और एक आत्मानुभव नहीं बन सकता है तो जीवन तो सबका चल रहा है। पशु पक्षी भी जी रहे हैं, वे भी आहार, भय, मैथुन परिग्रह इन चार संज्ञाओंमें पड़े हैं, ये मनुष्य भी पड़े हैं, परिवार पशुओंका भी होता है, मनुष्योंका भी होता है। ये मनुष्य, ये महिलाएँ सब बड़े प्रिय लगते हैं मगर उन पशु पक्षियोंसे पूछो, क्या उन्हें भी ये मनुष्य सुन्दर लगते हैं? अरे उन पशु पक्षियोंकी दुनिया उन पशु पक्षियोंकी जातिमें है। वे यपने आपकी बिरादरीमें एक दूसरेको रूपवान, सम्पन्न, अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार निरखते हैं। यहाँ कुछ मनुष्योंने अपने इन मनुष्योंके बीचमें मनुष्योंको अच्छा मान रखा है। और यह जानो कि इन मनुष्योंकी संख्या तो कम है और पशुओंकी संख्या अधिक है। तो बिरादरीकी संख्या पशुवों की अधिक है, वे अपनी दुनियाँमें मौज करते हैं और मनुष्य अपनी दुनियामें मौज करते हैं। तो इस दुनियाकी मौजकी दृष्टिसे तो सभी जीव एक समान हो गये। चाहे पशु हो, चाहे पक्षी हो, चाहे मनुष्य हो, सब इसी दर्जेमें हैं, लाभकी बात कुछ नहीं है।

मानवजीवनमें लाभकारक पुरुषार्थ - मनुष्यजन्ममें लाभकी बात तो यह है कि इस संसारमें रहने वाले ये आत्मा अपने आपके आत्माके स्वरूपको जान जायें और ऐसा अनुभव करलें कि इन्हें यह निर्णय हो जाय कि इस आत्मस्वरूपके निकट बसनेमें ही लाभ है, सार है कल्याण है। इसके अतिरिक्त अन्य कामोंमें पड़ जानेसे आत्माका अलाभ है। यह निर्णय आ जाय और इसीमें रुचि जगे कि मैं अपने आत्मस्वरूपको जानूँ और उसके निकट ही रहा करूँ। यह परिस्थिति बने, अनुभूति बने तो मनुष्यजन्म सफल है। एक ही निर्णय रखिये! मुझे जीवनमें एक ही काम करनेको पड़ा है, आत्मानुभव करनेका, और तो सब ऐसे काम हैं कि हों न हों, कैसे ही हों, वे सब क्षम्य हो सकते हैं, पर आत्मानुभव न हो तो हमारी क्षमा नहीं हो सकती। आत्मानुभवसे ही हमारा उद्धार है, ऐसा जानकर हम ज्ञानके स्वरूपको जाननेमें अनुभव करनेमें विशेष पुरुषार्थ करें। वह सत्सङ्गतिसे बने, स्वाध्यायसे बने, उपदेशसे बने, सभी उपायोंसे हम आत्मानुभव करनेका यत्न करें।

ज्ञानान्तरके व्यवधानसे रहित अल्प ज्ञानमें भी प्रत्यक्षता—जिस प्रतिभासमें, जिस ज्ञानके द्वारा वह प्रतिभास हो रहा है उस ज्ञानसे अन्य ज्ञानकी अपेक्षा नहीं पड़ती, उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं, अथवा विशेषरूपसे प्रतिभास होनेका नाम प्रत्यक्ष है। इसपर कोई यह प्रश्न कर सकता है कि जब थोड़ा अन्धकारसा हो, जैसे कि प्रातः ब्राह्म मुहुर्तका समय होता है, कहीं घूमने जा रहे हैं, दूरसे ही एक वृक्ष दीखा

स्पष्ट नहीं किन्तु उसका थोड़ा आकार दीखा। इतना फैला हुआ है, इतना ऊँचा है, कुछ तना भी मालूम पड़ा, वह दीखा अस्पष्टरूपसे। पर जो भी उसके प्रति ज्ञान होता है क्या वह भी प्रत्यक्ष कहलाता है ? ऐसा प्रश्न किया गया। उसका उत्तर है कि वह भी प्रत्यक्ष है चाहे उसका विशेषरूप न ज्ञात हो, कितनी डालियाँ हैं ? कैसे पत्ते हैं ? कैसे फल लगे हैं ? किस तरहके फूल लगे हैं ? यों विशेषरूप नहीं ज्ञात हुआ फिर भी आकार मुद्राका जितना भी ज्ञान हुआ वह तो प्रत्यक्ष है ही, क्योंकि इस ज्ञानमें अन्य ज्ञानकी आड़ नहीं है। सीधा इन नेत्रोंसे देख लिया गया और जान लिया गया। इस जाननेमें स्पष्टता है इसमें कोई विवाद तो नहीं है, इस कारण ऐसा भी ज्ञान इन्द्रियसे अस्पष्ट नजर आये तो भी स्पष्ट ही कहलाता है। अपेक्षाकृत अस्पष्ट है, विशेष परिचय नहीं है, उससे अस्पष्ट कह लीजिये ! मगर जितना बोध हो उतना स्पष्ट ज्ञान है।

प्रत्यक्ष और अनुमान ज्ञानमें विशदताका उदाहरण अब उस वृक्षको निरखकर जिसे एक आकार देखकर सामान्यरूपसे यह वृक्ष है, ऐसा ज्ञान किया गया था, उस वृक्षके प्रति कुछ थोड़ी ही देरमें विशेष ज्ञान होने लगता है तो वह अनुमान बन गया। जैसे धुधला देखा वह पेड़ तो प्रतिभासमें आया कि यह वृक्ष है ऐसा भी अभी निश्चय नहीं किया गया किन्तु जो आकार दृष्टिमें आया उतने आकारका प्रत्यक्ष हुआ। कुछ इसमें थोड़ा साधन बनाकर अनुमान कर रहे हैं कि यह वृक्ष होना चाहिए अन्यथा ऐसा संस्थान न होता। वृक्ष होना चाहिए, यह जो ज्ञान हुआ है यह परोक्ष है, क्योंकि इसके पहिले जाने हुए ज्ञानकी अपेक्षा की गई। जो धूँधलासा आकार मुद्रा देखा वह तो है प्रत्यक्ष, उसे देखकर यह अनुमान किया कि यह वृक्ष होना चाहिए अथवा यदि हाथी हो तो धुधलासी दीखा था वह तो हुआ प्रत्यक्ष और कुछ क्रियासी नजर आनेपर यह ज्ञान किया गया कि यह हाथी है यह हुआ अनुमान और परोक्ष ज्ञान, क्योंकि दूसरे ज्ञानमें व्यवधान आ गया और साधन नजर आया जो पहिले जाना उस ज्ञानसे फिर अनुमान आ गया, इस कारण यह तो प्रत्यक्ष नहीं हुआ, पर पहिले जो जाना, चाहे धुधला ही जाना वह मुद्रामें स्पष्ट रहा और विवादरहित रहा, इसलिए वह प्रत्यक्ष ज्ञान है। तो जैसे यहां बहुत दूर देशमें एक संस्थान मुद्रा उसने जाना था तो आकारमें तो प्रत्यक्ष हुआ, उसे जानकर यह अनुमान बन रहा कि वृक्ष का ऐसा संस्थान होता है, यदि नीचे सो मोटा ऊपर पतला देखा तो जाना यह तो भुसका ढेर है, जो कुछ भी हो, एक एक दृष्टान्त अलग अलग लेना है। तो उनका जो ज्ञान हुआ कि ऐसे संस्थान वाला तो यह पदार्थ है यह उत्तर कालमें साधन द्वारा विशेष बोध हुआ यह अनुमान है, लेकिन इसी प्रसङ्गमें थोड़ा उजाला सा हुआ, आगे बढ़े तो वह चीज स्पष्ट नजर आयी जो पहिले धूधलासा एक आकार नजर आया था, अब ऐसा दृष्टिमें आने लगा कि यह तो वृक्ष है, तो ऐसा जो ज्ञान हुआ यह भी प्रत्यक्ष है और पास चले, और विशेष बोध हुआ, एक एक पत्तेका ज्ञान होने लगा वह भी

प्रत्यक्ष है, इस प्रत्यक्षने पूर्वज्ञानकी अपेक्षा नहीं की और अनुमान जब बनता है तो वह पूर्वज्ञानकी अपेक्षा रखता है । तो जो ज्ञान अन्य ज्ञानकी अपेक्षा न करे और प्रतिभास करले यह प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है ।

अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञानमें भी ज्ञानान्तरका अव्यवधान – अवधिज्ञानमें भी जिस समय अवधि जोड़ी जाती है उस अवधि जोड़नेके समयमें सीधा आत्मशक्तिसे ज्ञान होता है । यद्यपि अवधिज्ञान वाले विकल्प करके अवधिको जोड़नेका यत्न करें जैसे किसीने प्रश्न किया कि अमुक जगह क्या स्थिति है ? तो उसने विकल्प बनाया कि जानूँ और उसके बाद फिर अवधिज्ञान जब हुआ तो उसका उपयोग चला, उस उपयोगने विकल्पकी अपेक्षा न रखी. ऐसी ही ज्ञानान्तरनिरपेक्षता मन:पर्ययज्ञानमें भी है । जैसे कि अनुमान ज्ञानमें साधनसे साध्यका ज्ञान होता है तो साध्यके ज्ञानसे साधनके ज्ञानकी अपेक्षा की । उसके बिना यह साध्यका ज्ञान नहीं हो सका । उस कालमें ही अनुमानमें साध्यज्ञानमें साधनज्ञानकी अपेक्षा है, जिस कालमें अनुमानसे जान रहे हैं लेकिन अवधि अथवा मन:पर्यय ज्ञानमें उस ज्ञानके समय अन्य ज्ञानकी अपेक्षा वहां नहीं होती । तो जहां ज्ञानान्तरका व्यवधान नहीं है वह प्रत्यक्ष कहलाता है । यह वैशद्य लक्षण प्रमाणके लक्षणकी निर्दोषता साबित कर रहा है । तो जैसे इस प्रसङ्गमें पहिले धूधला देखा, फिर जरा और स्पष्ट दीखा कि यह वृक्ष है, यह आमका पेड़ है, यह फल वाला पेड़ है । इसी प्रकार जो अनेक स्पष्ट होने लगे तो जितने स्पष्ट ज्ञान हैं उतने ही ज्ञान हैं और उन ज्ञानोंमें किसी भी ज्ञानने पूर्वज्ञानकी अपेक्षा नहीं की । हालांकि उस एक ही पदार्थके बारेमें क्रमश: स्पष्टज्ञान विशेष विशेष होता जा रहा है, पर जिस ज्ञानने जितना भी जाना उस ज्ञानने उसी समय अपने ही साधनसे उतना स्पष्ट जाना है, क्योंकि इन सब प्रसङ्गोंमें जो स्पष्ट ज्ञानावरण है. विशद ज्ञानावरण है उसका विभिन्न क्षयोपशम है और उस क्षयोपशमसे वे ज्ञान उत्पन्न हुए हैं ।

सांव्यवहारिक प्रत्यक्षोंमें वैशद्यके परिचयका एक दिग्दर्शन - इस बातको कुछ इस ढङ्गसे भी समझ सकते कि जैसे मान लो एक पेड़के बारेमें ५ बार ज्ञान हुआ, स्पष्टताकी मुख्यतासे पहिले धूधलासा दीखा फिर उसकी टहनी दीखीं, फिर उसके पत्तोंका स्पष्ट बिस्तार दीखा । पत्ते भी अलग अलग नजर आने लगे । कल्पना करो कि पहिले जो दो तीन स्पष्ट ज्ञान हुए वे अगर न होते, जैसे दोपहरमें देख लेते हैं उसी चीजको तो इतना स्पष्ट ज्ञान एकदम भी तो हो गया ना, जैसे कि पेड़में ५वीं बार स्पष्ट ज्ञान हुआ तो ५वें नम्बरका जो स्पष्ट ज्ञान है इस तरहका स्पष्ट ज्ञान बिना उन ४ ज्ञानोंके हुए भी तो कभी हो सकते हैं ना ! जब उजेला है विशेष तो एकदम स्पष्ट दिख गया, पर अनुमानमें एकदम यह नहीं हो सकता कि कभी तो धूमका ज्ञान करके अग्निका ज्ञान हुआ और किसी समय धूमका ज्ञान किए बिना ही

अग्निका सीधा ज्ञान हो जाय यह अनुमानमें नहीं हो सकता।

परोक्षज्ञानोंके स्वरूपके संवेदनकी प्रत्यक्षरूपता अब यहां शङ्काकार यह आशङ्का कर रहा है कि परोक्षज्ञानमें भी तो स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क अनुमान, इन ज्ञानोंके स्वरूपका जो सम्वेदन होता है वह सम्वेदन तो प्रत्यक्ष है अर्थात् स्पष्ट है तो यह लक्षण अलक्ष्यमें भी जुड़ गया, परोक्षमें भी घट गया इस कारण अतिव्याप्ति दोष है। इसमें शङ्काकारका क्या अभिप्राय है - शङ्काकार स्मृति प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान इन जानोंको प्रत्यक्ष नहीं साबित कर रहा। जैनशासन भी प्रत्यक्ष नहीं मानता, और यह शङ्काकार भी इन ज्ञानोंको प्रत्यक्ष नहीं साबित कर रहा, किन्तु इन ज्ञानोंके स्वरूपका जो संवेदन रहता है, परिचय रहता है वह ज्ञान तो यह बर्तता है, जो निजपर बीतती है उस स्वरूप सम्वेदवकी बात कर रहे हैं कि यह स्वरूप सम्वेदन तो स्पष्ट समझमें आता है और इसमें ज्ञानान्तरका व्यवधान भी नहीं है तो इसे फिर प्रत्यक्ष मान लिया जाना चाहिए। तो ये परोक्षज्ञान भी लो प्रत्यक्ष बन गए। आचार्य देव उत्तर देते हैं कि जो स्वरूप सम्वेदन होता है वह तो प्रत्यक्ष ही है। स्मरण ज्ञान हो तो स्मरण ज्ञानमें जो बाह्य पदार्थविषयक ज्ञान हुआ वह स्मरण ज्ञान तो परोक्ष है, पर स्मरण ज्ञानका जो यहां अनुभव चल रहा है, स्मरणज्ञानके स्वरूपका जो सम्वेदन है अपने आपपर जो ज्ञानकी बृत्ति बीत रही है वह सम्वेदन प्रत्यक्ष है। स्मरण परोक्ष है, पर स्मरण स्वरूपका जो ज्ञान हो रहा, संवेदन हो रहा वह ज्ञान प्रत्यक्ष है।

सुखादिसंवेदनकी भांति स्मृत्यादिज्ञानस्वरूपसंवेदनमें ज्ञानान्तरोंका अव्यवधान— भैया! हम आप लोगोंको क्षायोपशमिक ज्ञानके स्वरूपका सम्वेदन मनके द्वारा सीधा होता है। इसमें ज्ञानान्तरका व्यवधान नहीं है इसलिए यह मानसिक प्रत्यक्ष कहलाता है। जैसे सुख उत्पन्न हुआ तो सुखके स्वरूपका जो हमें सम्वेदन हुआ वह सम्वेदन तो स्वाधीन है ना, उत्पत्तिमें भी स्वाधीन है। जैसी लोगोंकी धारणा है और नैमित्तिक व्यवस्था भी है कि भोजन आदिक करनेसे सुख होता है तो उस सुखकी उत्पत्तिमें पराधीनता रहती है ना! भोगोंका समागम, इन्द्रियकी प्रकर्षता ये सब पराधीनताएँ रहीं, पर उत्पत्तिमें सुख तो पराधीन रहा। सुख होकर जो सुखके स्वरूपका अनुभव चलता है, भीतरका वह सम्वेदन पराधीन नहीं है वह परवस्तुसे उत्पन्न नहीं हुआ है। तो सुख होना दूसरी बात है और सुखके स्वरूपका सम्वेदन होना, अनुभव होना यह दूसरी बात हुई। इसी प्रकार स्मरण ज्ञान हुआ, प्रत्यभिज्ञान तर्क, अनुमान ज्ञान होना यह बात अन्य है और इस ज्ञानके स्वरूपका जो सम्वेदन हो रहा यह अनुमान है, इस ज्ञानके स्वरूपका सम्वेदन प्रत्यक्ष है और यह ज्ञान परोक्ष है।

बाह्य अर्थके ग्रहणमें प्रत्यक्ष और परोक्षरूपताकी खोज—ज्ञानोंमें जो यह व्यवस्था बनी होती है कि यह ज्ञान प्रत्यक्ष है, यह ज्ञान परोक्ष है यह बाह्य अर्थों

के ग्रहणकी अपेक्षा भेद है, तो ज्ञानके सम्वेदनकी दृष्टिसे सर्वज्ञान एक समान प्रमाण है। केवलज्ञान भी सकल प्रत्यक्ष प्रमाण है, उसे प्रमाण भी क्या कहा जाय? प्रमाण की वह चरम सीमा है। इस कारण यह भी कह सकते कि प्रमाण और अप्रमाणकी भेद व्यवस्था वहां है ही नहीं, वहां प्रमाण भी क्या कहा जाय? जहाँ भेदव्यवस्था सम्भव है वहाँकी बात देखें जैसे बाहरमें सीप पड़ी हुई है, अब उसके सम्बन्धमें हम अटकलपच्चू जान रहे हैं संशयज्ञान चल रहा है, यह सीप है या चाँदी है। अगर सीप को हम चाँदी जान गए, विपर्यय ही ज्ञान हो गया कि यह चाँदी है, तो यह चाँदी है इस प्रकारका जो यहाँ ज्ञान चल रहा है कि ज्ञानका जो सम्वेदन हो रहा है, यह जो परिणमन चल रहा है यह सत्य है कि असत्य है? यह तो सत्य है, यह तो परिणमन ठीक है मगर बाह्य पदार्थपर जब कुछ निर्णय करते हैं तो वह चाँदी तो नहीं है, तो विपर्ययज्ञान बाह्य पदार्थकी अपेक्षा कहलायेगा। यह जो परिणति बन रही है उसकी अपेक्षा सम्यक् और मिथ्याका निर्णय नहीं होता। बाह्य पदार्थोंकी दृष्टिसे ज्ञानमे सम्यक् और मिथ्याका निर्णय होता है। यहाँ तक यह बात सिद्ध की गई कि जो विशद ज्ञान हो उसे प्रत्यक्ष कहते हैं जिसके जाननेमें अन्य ज्ञानोंकी आड़ नहीं लेनी पड़ती उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं।

इन्द्रियार्थसन्निकर्षजताको प्रत्यक्षका लक्षण माननेमें दोषापत्ति—प्रत्यक्षका लक्षण वैशद्य सिद्ध होनेके प्रसङ्गमें नैयायिक कहते हैं कि प्रत्यक्षका लक्षण यह सही नहीं जचता। प्रत्यका लक्षण यह मानो कि इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्धसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष ज्ञान है। बात कुछ ठीक सी भी जच रही होगी कि सही तो है। जब हम हाथसे चीजको छूते हैं और ज्ञान हो जाता है कि यह ठंढा है तो यह प्रत्यक्ष ज्ञान हो गया। इसमें किसीको सन्देह तो नहीं रहता। तो इन्द्रिय और पदार्थका सम्बन्ध होनेसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाता है, ऐसा नैयायिक लोग अपना मंतव्य रख रहे हैं। क्या लक्षण बन गया उनका? जो इन्द्रिय और पदार्थका सम्बन्ध होनेपर ज्ञान उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष कहलाता है। आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि जरा इस लक्षणको सर्वज्ञके ज्ञानमें तो घटा दीजिये! सर्वज्ञका ज्ञान प्रत्यक्ष है कि नहीं? हां है। तो सर्वज्ञका ज्ञान भी क्या इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्धसे उत्पन्न होता है? वहाँ इन्द्रियाँ हैं ही नहीं! केवल आत्मा ही आत्मा है, ऐसा ही निर्वाण सब मानते हैं। कोई भी मत वाले लोग ऐसा नहीं मानते कि जो घरमें बस रहा है और वह भगवान कहलाये! जो लोग ईश्वरका अवतार मानते हैं जैसे कच्छप वराह आदि हुए या अन्य जो जो अवतार लेते हैं तो मूलमें लौकिकतायुक्त निर्वाणका रूप वे भी नहीं मानते। ईश्वरने एक व्यवस्थाके लिए अवतार लिया है, यह बात उनकी अलग है और पृष्टव्य है कि ईश्वर हुआ अतीन्द्रिय आनन्द वाला। उसे अवतार लेनेकी क्या जरूरत है, उसे क्या कष्ट हुआ, उसको कौन सा फर्क पड़ड़ा था? इस तरह प्रश्न किए जायें, यह अलग बात है, पर निर्वाणका

स्वरूप जिन–जिनने भी माना है वह एक शून्यरूपसे माना है। कुछ नहीं रहा, केवल स्वरूप रहा, इस तरहका शब्द सामान्यरूपसे माना है। कुछ नहीं रहा, केवल स्वरूप रहा, इस तरहका शब्द सामान्यरूपसे सबकी धुनिमें आता है। सर्वज्ञका ज्ञान इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्धसे उत्पन्न नहीं होता। फिर सन्निकर्ष लक्षण सर्वज्ञज्ञानमें न जानेसे असिद्ध है।

सर्वज्ञत्वके अभावकी असिद्धि—यदि यह कहो कि सर्वज्ञका ज्ञान कुछ है ही नहीं तो यह बात यों युक्त नहीं जचती कि जितने भी जीव हैं वे ज्ञानस्वरूप हैं और जब वे ज्ञानस्वरूप हैं तो उनके ज्ञानस्वरूपका विकास भी है। किसीमें अल्प विकास है, किसीमें पूर्ण विकास है, पर विकास सबके है। जिसके पूर्णविकास है उसका नाम सर्वज्ञ है। सर्वज्ञका ज्ञान अपने आपकी शक्तिसे प्रत्यक्ष है। इन्द्रिय और पदार्थोंका सम्बन्ध होनेसे उत्पन्न हो और तब प्रत्यक्ष हो एसी बात नहीं है। ज्ञानस्वरूपका तो सभीको प्रत्यक्ष है, ज्ञानका अनुभवन सबके चलता है, कोई उसे पहिचान पाता है कोई नहीं पहिचान पाता। सभी हैं और ज्ञानका परिणमन सबके चलता है। जिसने अपने आपको इस रूपमें अनुभव कर लिया - मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, ज्ञानात्मक हूं, ज्ञानमात्र हूँ उसने सर्वकल्याण पा लिया।

ज्ञानस्वरूप, ज्ञानात्मक व ज्ञानमात्रके अनुभवके चमत्कार—यहाँ जो ये तीन बातें कही हैं, मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, मैं ज्ञानात्मक हूँ, मैं ज्ञानमात्र हूँ इन तीनोंमें अन्तर तो कुछ नहीं है फिर भी चिन्तवनकी पद्धतिमें कुछ भिन्न भिन्न चमत्कार हैं। मैं ज्ञानस्वरूप हूं मेरा ज्ञानस्वरूप है। इसकी अपेक्षा मैं ज्ञानात्मक हूं इसमें विशिष्ट अनुभूतिकी बात है। मैं ज्ञानात्मक हूँ, ज्ञानमय हूँ, ज्ञान ही मेरा आत्मा है, ज्ञान ही मेरा सर्वस्व है यों मैं ज्ञानात्मक हूँ, इसकी अपेक्षा "मैं ज्ञानमात्र हूँ" इस चिन्तनमें विशिष्ट चमत्कार है। मैं ज्ञानमात्र हूँ यहाँ कोई द्वैधीकरण नहीं हुआ। केवल ज्ञानमात्र ज्ञानका स्वरूप है, वही अपनेको अनुभव किया गया है, तो जो अपने आपको ज्ञानस्वरूप अनुभव कर लेता है, उसके यह निर्णय भी इस अनुभवके कारण बसा हुआ है कि मैं ज्ञानको ही करता हूँ और ज्ञानको ही भोगता हूँ। अब निरखिये, मैं ज्ञानमात्र हूँ। ज्ञानके सिवाय अन्य कुछ भी रूप मैं नहीं हूँ, तो जो कुछ भी मैं हूँ वह कुछ बर्तता तो रहता हूँ। कोई भी वस्तु बर्तने बिना रह नहीं सकती। पदार्थ हो और उसमें कुछ बर्तना न बने, अवस्थाका परिणमन न बने तो वह पदार्थ ही क्या है? जब मैं मात्र ज्ञान हूँ तो इस ज्ञानमें बर्तना भी निरन्तर चलती रहती है। तो ज्ञानकी जो बर्तना हैं, ज्ञानका जो परिणमन है वही मेरा ज्ञान है और इतना ही मैं करता हूं, इसके आगे मैं कुछ भी नहीं किया करता हूँ।

विकल्पोंके भी ज्ञानका ही कर्तव्य—जो जीव मोही है, इस ज्ञानके विशुद्ध स्वरूपसे अपरिचित हैं वे भी ज्ञानको ही कर रहे हैं, पर वे इस ज्ञान को विकल्परूपसे

कर रहे हैं. वे बिकल्पोंको कर रहे हैं, पदार्थोंको नहीं कर रहे हैं। ये मोही जीव कोई कितने उद्विग्न हैं कोई कितना फँसा हुआ है, कोई कितने कितने कार्योंमें जुटा है, कोई कितने ही कार्य सम्हाले है, सर्वत्र यह मनुष्य केवल अपने विकल्प बना रहा है। विकल्पोंसे आगे इस आत्माकी कुछ करतूत नहीं है, पर निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध ऐसा है कि विकल्प किये, उन विकल्पोंके कारण आत्माके प्रदेश कंपे, कम्पन हुआ और जिस तरहका विकल्प किया उसी तरहका प्रदेश कम्पन हुआ और जिस प्रकारका प्रदेशकंपन हुआ उस प्रकारसे शरीरकी वायु भी कपी, जिसे वात कहते हैं और शरीरकी वायुके कम्पनसे उस प्रकारके शरीरके अङ्ग चले —मुझे यह लिखकर भेजना है ऐसा विकल्प होनेपर उस प्रकारका प्रदेशकम्पन हुआ, उस प्रकारसे वायु कपी, उस प्रकारसे अङ्ग चले अब देखिये ! किसी भी निबन्ध आदिकके लिखनेमें कितनी कलाके साथ अंगुली चलती हैं, किसी अक्षरके लिखनेमें कितनी मरोड़ और लिखनेकी मोड़ चलती है। जो इतना अङ्गोंका कम्पन हुआ, अङ्ग चले, इस अङ्गका चलाने वाला आत्मा नहीं है। इन अङ्गोंको इस प्रकार चलानेमें कारण शरीरकी वायु हुई। और शरीरकी वायुका जो इस प्रकार कम्पन हुआ वह आत्माके प्रदेशोंके उस प्रकार कपनेसे हुआ। और आत्मप्रदेशोंका इस प्रकारका कम्पन इन विकल्पोंका निमित्त करके हुआ। तो मूलमें ये विकल्प निमित्त पड़े जो विकल्प आत्मारूप हैं, आत्माकी परिणति हैं, इसलिये व्यवहारमें यह बात कही जाती है कि मैंने लिखा, आत्माने लिखा, पर सही बातको देखो तो उसके भीतर कितने व्यवधान पड़े हुए हैं। आत्मा तो बहुत दूर अवस्थित है, तो यह मैं आत्मा सर्व दिशाओंमें केवल ज्ञानकी परिणतिको ही किया करता हूँ, किसी भी पदार्थको मैं करता नहीं हूँ। यह तो करनेकी बात हुई।

ज्ञानका भोक्तृत्व—अब जरा भोगनेकी बात देखिये ! मैं क्या भोगता हूँ, विकल्प भोगता हूं। यह जीव कल्पनाएँ तो करता है कि मैं वैभव भोगता हूँ, भोजन भोगता हूँ, वस्त्र भोगता हूँ, जिन जिन पदार्थोंका सम्बन्ध बनाकर यह सुख मानता है उन उन पदार्थोंको मैं भोगता हूं इस प्रकारकी यह कल्पना बना रहा, पर इस आत्माको देखो कि यह भोग किसे रहा है ? केवल विकल्पोंको भोग रहा है। बाह्य पदार्थोंका तो आत्मामें सम्बन्ध ही नहीं है। आत्मप्रदेशोंमें बाह्यपदार्थोंका तो कुछ प्रवेश ही नहीं है, कोई अधिकार भी नहीं है। वह अपने स्वरूप किलेके कारण अपने ही स्वरूपमें परिसमाप्त हो रहा है। उससे बाहर उसकी गति नहीं है। तो जिन पदार्थोंका मेरेमें प्रवेश नहीं, मेरेमें गमन नहीं, सम्बन्ध नहीं उन पदार्थोंको मैं भोग क्या रहा हूँ ? भोग रहा हूँ तो अपने विकल्पोंको ही भोग रहा हूँ।

बाह्य पदार्थोंमें दुःखकारिताका अभाव—और भी देखिये ! भैया ! जितना विकल्प है इतना ही हमारा संसार है इतना ही आत्माका बीज है। बाहरमें हमारे मकान न हुआ, हमारा यह टूट गया, हमारा वैभव घट गया, ये लोग मेरे अनु-

कूल नहीं चल रहे, ये मेरे प्रतिकूल बोलते, ये कोई दुःखके कारण नहीं हैं, ये तो बाहरी बातें हैं, उनकी बात उनमें हो रही है, उनसे मेरे आत्माका क्या सम्बन्ध है ? यहाँ जो विकल्प चल रहा है, हम अपनेमें बाह्यपदार्थोंके विकल्प बना रहे हैं ये विकल्प हैं हमारे दुःखके कारण। बाह्यपदार्थोंमें कोई कैसे रह रहा है, कोई कैसे रह रहा है, किसीको क्या बीत रही है, बाह्य पदार्थ अचेतन पुद्गल, सोना, चाँदी आदि जहाँके तहां पड़े हैं, कोई संयोग है, कोई वियोग है, ये सब बातें दुःख देनेमें कारण नहीं हैं, किन्तु उनके प्रति जो विकल्प मचा रखा है वह दुःखका कारण है अर्थात् जिस पुरुषने अपने आपको ऐसा अनुभव किया है कि मैं ज्ञानमात्र हूँ बस समझो उसने अपनेमें सवस्व सार प्राप्त कर लिया, इतना अनुभव न होनेपर कुछ भी बात की जा रही हो, सब व्यर्थ है।

शान्तिके उपायभूत ज्ञानकी प्रभावनामें वस्तुतः धर्मप्रभावना—अब आप समझ लीजिये कि शान्तिके लिए क्या करना पड़ता है ? ज्ञानका विकास, ज्ञानकी समझ। यदि लोगोंका उपकार करना है, लोगोंको सुखी बनाना है तो क्या करें ? लग जाना चाहिए ज्ञानकी समझ बनानेमें ! वह ज्ञानके स्वरूपको ग्रहण करले ऐसी बात करनी चाहिए। तो यही धर्मप्रभावना है। जिस धर्मके प्रभावसे जीव शान्त सुखी हो जाया करते हैं वह धर्म है क्या ? वह धर्म है यही ज्ञानानुभव। तो इस ज्ञानकी बात तो करे नहीं, उसका लक्ष्य भी न रखे, बाहरी बाहरी कामोंको हो करते रहें और चाहें कि धर्मकी प्रभावना हो जाय तो यह कैसे हो सकेगा ? इस लोकमें जो बड़े साहसी लोग भी हैं जिनमें बड़ी बड़ी चतुराइयां हैं, वे चाहें कि हमारी इन लौकिक चतुराइयोंसे इस धर्मकी प्रभावना होजाय तो यह कैसे हो सकता है ? धर्मकी प्रभावनाका सम्बन्ध तो मात्र ज्ञानसे है। यदि ज्ञानमात्र तत्त्वकी बात खुदकी समझमें आये, तो खुदमें धर्मकी प्रभावना हुई और दूसरोंकी समझमें आये तो दूसरोंमें धर्मकी प्रभावना हुई। जिससे शान्ति मिले उसीका ही तो विस्तार करना है। शान्ति मिलती है ज्ञानमात्र अनुभवसे अपने आपको जब कभी भी इतना ही मात्र निरख लें शरीरकी भी सुधि भूलकर जब यह अनुभव कर लें कि यह मैं ज्ञानमात्र हूँ तो ज्ञानात्मक अपने आपके अनुभवमें चूँकि कोई विकल्प नहीं रहे तो आत्मीय परमार्थ शुद्ध आनन्द प्रगट होता विवश होकर अर्थात् उस आनन्दको प्रकट होना ही पड़ता है। ऐसा कभी नहीं हो सकता कि हम मात्र ज्ञानस्वरूप अपनेको अनुभव रहे हों और वहाँ आनन्द न हो।

ज्ञानसंवेदनकी प्रत्यक्षरूपता—भैया ! अपने ज्ञानके स्वरूपकी सम्हाल करिये ! विशुद्ध उत्कृष्ट स्वाधीन शुद्ध पवित्र आनन्द वहां ही प्रगट होता है जहाँ यह ज्ञान अपने आपको ज्ञानमात्ररूप अनुभव करने लगता है। अब यहाँसे ही आप समझ लीजिए कि ऐसा ज्ञानरूप अपनेको अनुभव करना यह प्रत्यक्ष ज्ञान कहलायेगा या परोक्ष ? यह प्रत्यक्ष है ! अब इसके बाद जो परोक्ष ज्ञान भी हो रहा है, बाह्य

पदार्थोंके सम्बन्धमें जो ज्ञान चल रहे हों उन ज्ञानोंका भी जो यह सम्वेदन होता है वह सम्वेदन होता है वह सम्वेदन भी प्रत्यक्ष है। ज्ञान जो स्पष्ट हुआ वह प्रत्यक्ष है। इस लक्षणपर जो यह बात रखी गयी कि इन्द्रिय और पदार्थोंके सम्बन्धसे जो ज्ञान उत्पन्न हुआ वह प्रत्यक्ष है। उसपर आपत्ति दी जा रही है कि सर्वज्ञके ज्ञानमें यह स्वरूप घटित नहीं होता इस कारण प्रत्यक्षका लक्षण यह ठीक नहीं है। प्रत्यक्षका निर्दोष लक्षण यों है कि अन्य ज्ञानके व्यवधान बिना जो प्रतिभास होता है अथवा विशेषरूपसे जो प्रतिभास होता है उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं।

इन्द्रियार्थसन्निकर्षजताकी सुखसंवेदनप्रत्यक्षमें असिद्धि—प्रत्यक्षका लक्षण है अन्य ज्ञानोंके व्यवधान बिना प्रतिभास होना अथवा विशेषरूपसे प्रतिभास होना, अर्थात् स्पष्ट प्रतिभासको प्रत्यक्षका लक्षण कहा है इसपर नैयायिक सिद्धान्तने अपना मंतव्य यह रखा है कि प्रत्यक्षका लक्षण यह ठीक है जो इन्द्रिय और अर्थके सम्बन्धसे उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष है इसका समाधान सर्वज्ञके ज्ञानमें इस लक्षण का घटित न होना बताया था। अब समाधानमें दूसरी बात यह कही जा रही है कि जो हम आपको सुख आदिकका सम्वेदन होता है, सुखका परिचय होता है वह सुख सम्वेदन प्रत्यक्ष है ना, लेकिन उसमें इन्द्रिय और अर्थका सम्बन्ध नहीं है। तो इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्ध बिना भी सुख आदिक सम्वेदन प्रत्यक्ष विदित होते हैं इस कारण आपका लक्षण अव्याप्त हो गया। जितने जितने प्रत्यक्ष हैं उन सबमें इन्द्रिय और पदार्थका सम्बन्ध नहीं मिलता है। इन्द्रिय और सुखका सम्बन्ध होनेसे सुख सम्वेदन होता है यह बात तो कोई भी नहीं कह सकता। अपने आप सुख आदिकका ग्रहण होता है तो तुम्हारा यह प्रत्यक्षका लक्षण जैसे सर्वज्ञके ज्ञानमें घटता नही, वैसे सुख आदिकके सम्वेदनमें भी घटित नहीं होता।

इन्द्रियार्थसन्निकर्षजताकी चाक्षुषज्ञानमें असिद्धि—अक्षार्थसन्निकर्षजता चाक्षुष ज्ञानमें भी घटित नहीं होती। आंखसे जिस पदार्थको जानते हैं उसकी आँखसे कोई भिड़न्त तो नहीं होती। जैसे हाथसे पदार्थका स्पर्श जाना तो पदार्थका और हाथका सम्पर्क हुआ। इसी प्रकार आँखका और इस पदार्थका सम्पर्क तो होता नहीं और पदार्थ ज्ञानमें आता है तो चाक्षुष ज्ञानमें आपका यह लक्षण घटित नहीं होता कि जो इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्धसे उत्पन्न हो वह प्रत्यक्ष कहलाता है। इसपर अब नैयायिक सिद्धान्तसे यह सिद्ध किया जा रहा है कि आँख भी पदार्थसे भिड़कर जानती है। उसके लिये यह अनुमान बनाता है कि चक्षु भी प्राप्त करके पदार्थको जानते हैं। जैसे कि स्पर्शन इन्द्रिय पदार्थसे भिड़कर ही जानती है। इसी प्रकार आंखें भी पदार्थ से भिड़कर जाना करती हैं, क्योंकि बाह्य इन्द्रिय होनेसे। इस प्रकार नैयायिकसिद्धान्त ने चक्षुको भी प्राप्यकारी सिद्ध करनेका प्रयास किया। अन्य इन्द्रियकी भांतिके उदाहरणका स्पष्ट भाव यह है कि जैसे जब शब्द और कानका सम्बन्ध होता तो शब्द

जाने जाते, नाक और गंधका सम्बन्ध जब होता तो गंध जानी जाती। रसनाका और पदार्थका भोजनका जब सम्बन्ध होता तब रस जाना जाता है। हाथका और पदार्थका सम्बन्ध होता तब ठंड गरमी आदिक जाने जाते हैं। इसी प्रकार चक्षुसे भी तो जाना जाता है उसका चक्षुसे सम्बन्ध है तब जाना जाता है।

चक्षुकी प्राप्यकारी सिद्ध करनेमें दिये गये बाह्येन्द्रियत्व हेतुके स्वरूप की असिद्धि बाह्येन्द्रियत्व हेतुके सम्बन्धमें आचार्यदेव पूछते हैं कि चक्षु प्राप्त अर्थसे भिड़कर ज्ञान करते हैं इसमें हेतु दिया है बाह्य इन्द्रिय होनेसे। तो बाह्य इन्द्रियपने का अर्थ क्या है? क्या इतना ही अर्थ है कि ये इंद्रियां बाह्य पदार्थोंके सम्मुख बनती हैं? या यह अर्थ है कि ये इंद्रियां बाहर रहने वाले पदार्थोंके पास ठहरती हैं? दूर देशमें रहनेका नाम क्या बाह्य इन्द्रिय है। इन दो पक्षोंमेंसे पहिली बात माननेपर अर्थात् बाह्यपदार्थोंके अभिमुख होनेका नाम बाह्य इंद्रिय है ऐसा माना जाय तो मन से अनेकान्त दोष होता है। अर्थात् मन भी बाह्य पदार्थोंके ग्रहण करनेके अभिमुख ही हुआ करता है। जैसे कि अब हम मनसे किसी बातको सोचते हैं तो ऐसा लगता है ना कि यह मन उस पदार्थके अभिमुख होता है। चाहे यह मन यहां ही रहकर अभिमुख माने चाहे मनकी गति बनाकर पदार्थोंके अभिमुख हुआ माने, पर मन पदार्थके अभिमुख हुआ करता है. किन्तु मनको प्राप्यकारी तो नहीं मानते हैं। मनसे जो पदार्थ जाना जाता है मन उस पदार्थसे भिड़ता हो फिर ज्ञानमें आये पदार्थ, ऐसा तो नहीं माना गया? यदि यह कहो कि बाह्य इन्द्रियका यह अर्थ है कि दूर क्षेत्रमें याने बाह्य देशमें इन्द्रियोंका अवस्थान है तो इसमें तो प्रत्यक्षसे बाधा है, चक्षु कहीं बाहरमें कहाँ ठहरे हैं?

गोलकरूप बाह्यचक्षुरिन्द्रियकी प्राप्यकारिताकी असिद्धि— चक्षु मायने क्या? जो यह गोल-गोल गटा या पिण्ड है उसका नाम चक्षु है क्या? या कोई किरण होती है उसका नाम चक्षु है? तो रश्मिरूप चक्षु कहीं दूर देशमें नहीं है ऐसा आपने भी माना है क्योंकि आपने ही बताया है कि इस गोलकके अन्दर ही पड़ी हुई तैजस द्रव्यके आश्रय रश्मियाँ (किरणें) हैं ये किरणें बाहरमें नहीं हैं। यदि गोलक को चक्षु मानोगे तो वह कहीं बाहर पड़ा ही नहीं है, सब लोग जान रहे हैं। इससे यह बात सिद्ध नहीं की जा सकती कि आँखें बाह्य पदार्थोंसे भिड़कर ही जानती हैं। अन्य इन्द्रिय तो भिड़कर जानती हैं। कानके साथ शब्दकी भिड़न्त न हो तो कान शब्दको नहीं जान सकते इसी प्रकार घ्राण, रसना, स्पर्श इन्द्रियके साथ भी विशेष भिड़न्त न हो तो ये इन्द्रियाँ भी नहीं जान सकती, किन्तु चक्षु और मन ये दो ऐसे तत्त्व हैं या इन्द्रिय अनिन्द्रिय हैं कि ये दूसरे पदार्थके भिड़े बिना ही, स्पर्श किए बिना ही जानते हैं। तो यह अनुमान बनाना कि चक्षु प्राप्त अर्थका प्रकाशक है, बाह्य इन्द्रिय होनेसे स्पर्शन आदिक इन्द्रियकी तरह तो यह बाह्य इन्द्रियपना हेतु सिद्ध नहीं होता।

मनको प्राप्यकारी सिद्ध करनेसे बचानेकी अशक्यता चक्षुकी प्राप्यकारिताकी सिद्धिमें बाह्येन्द्रियत्व हेतुके देनेमें आपने जो चतुराई की है अर्थात् "इन्द्रिय होनेसे" इतना न कहकर "बाह्य इन्द्रिय होनेसे" यह जो कहा है वह इसलिए तो कहा कि कहीं यह हेतु मनमें न चला जाय क्योंकि मन प्राप्त अर्थका प्रकाशक नहीं है, अर्थात् मन पदार्थसे छूकर जानने वाला नहीं है, सो बाह्य शब्द दे दिया। लेकिन बाह्य शब्द देनेसे भी मनको आप अपने सिद्धान्तके अनुसार प्राप्यकारित्वसे अलग नहीं कर सकते। जिस ढङ्गसे आप मनके द्वारा ज्ञान करना मानते हो उसमें भी मन प्राप्त अर्थका प्रकाशक सिद्ध होता है। कैसा मन ? नैयायिक सिद्धान्तमें यह माना गया है कि मनका आत्माके साथ संयोग सम्बन्ध है और आत्माका सुख आदिकके साथ समवाय सम्बन्ध है। संयोग सम्बन्ध कहते हैं अत्यन्त भिन्न पदार्थोंका जो सम्बन्ध होता है उसको, जो संयोग होनेपर भी न्यारा न्यारा रहे उसे संयोग सम्बन्ध कहते हैं। जैसे चौकीपर पुस्तकका सयोग है तो चौकीपर पुस्तकका सम्बन्ध होनेपर भी ये दोनों न्यारे न्यारे हैं। तो संयोग कहलाता है इस तरहका सम्बन्ध और समवाय कहलाता है कथंचित् तादात्म्य जैसा सम्बन्ध। जैसे दूधमें चिकनाई है तो दूधमें चिकनाईका समवाय है, समवाय सम्बन्ध मिला हुआ होता है और संयोगमें चीज मिली हुई नहीं होती। तो नैयायिक सिद्धान्तसे जो सुखका ज्ञान होता है वह इस प्रकार होता है कि मनका तो आत्माके साथ संयोग सम्बन्ध है और आत्माके साथ सुखका समवाय सम्बन्ध है तो, यों मनके संयुक्त समवाय सम्बन्धके रूपसे होने वाले सुखको जाना तो मनसे भी भिड़कर ही तो जाना। जैसे स्पर्शन इन्द्रिय पदार्थसे भिड़कर जाना करती है इसी प्रकार मन भी भिड़कर जानने लगा। उसे हटानेके लिये बाह्य इन्द्रिय शब्द क्यों दिया है ?

व्याप्तिज्ञानमें भी मनकी प्राप्यकारिता सिद्ध होनेका प्रसङ्ग – मनकी प्राप्यकारिता सिद्ध कर जाने वाले अपने सिद्धान्तको जरा और भी देखो ! नैयायिक सिद्धान्तके अनुसार जो व्याप्तिका ज्ञान होता है – जहाँ जहाँ धूम है वहाँ वहाँ अग्नि है तो सारे विश्वके धूम और अग्नि आ गये। जब सारे विश्वको छान लिया तब व्याप्ति भी बन गयी। सो नैयायिकोंने सारे विश्वको छान डाला। कहते कि मनका तो आत्माके साथ सम्बन्ध है और आत्मा है सर्वव्यापक तो आत्मा भिड़ गया सारे विश्व से। अब सारे विश्वमें जहाँ जहां जो जो चीज है उन सबके साथ इस आत्माका सम्बन्ध है और आत्माके साथ मनका सम्बन्ध है तो देखो इस मनने व्याप्तिज्ञानमें भी सारे पदार्थोंसे भिड़ भिड़कर जाना सब पदार्थोंका सम्बन्ध करके जाना तो मन भी प्राप्त अर्थका प्रकाशक सिद्ध होगा आपके सिद्धान्तसे जैसे कि चाक्षुष ज्ञानमें माना गया है। चाक्षुष ज्ञानमें मानते हैं कि आँख पदार्थोंसे भिड़कर जाना करती है। कैसे भिड़ना होता है सो भी सुनो ! नेत्रसे तो हुआ चौकीसे सम्बन्ध और चौकीमें समवाय सम्बन्धसे रहता है रूप। रूप चौकीका गुण नहीं मानते वे लोग। मानते तो हैं पर चौकीका ही कुछ अवयव है इस तरह नहीं, किन्तु गुण अलग चीज है, चोकी अलग

चीज है रूपका इस चौकीमें समवाय सम्बन्ध है और चौकीका नेत्रके साथ संयोग सम्बन्ध है तो यों संयुक्त समयाय सम्बन्धसे जैसे आँखें रूपको जानती हैं, इसी प्रकार संयुक्त समवाय सम्बन्धके ढङ्गसे मन व्याप्तिज्ञानको जानता है और सुख आदिकको जानता है। यों सन्निकर्षके प्रसङ्गमें मनकी प्राप्यकारिताके माननेकी अनिष्ट बात आ गयी।

सम्बन्धसम्बन्धको सम्बन्ध न माननेकी मान्यताका प्रस्ताव - यदि यह कहो कि यह तो सम्बन्ध ही कुछ नहीं कहलाता। सीधा सम्बन्ध हो उसका नाम सम्बन्ध है। अभी मनका आत्माके साथ संयोग है. ठीक है, वह सम्बन्ध हो गया, और आत्माके साथ सुखका समवाय सम्बन्ध है यह भी सम्बन्ध हो गया, पर मनका भी सुखके साथ चूँकि सयोग सम्बन्ध जिसमें है उसमें समवाय सम्बन्ध है, यों सम्बन्ध मान लें तो वह कोई सम्बन्ध नहीं है। जैसे रिस्तेदारोंमें एक साला बहनोईका सम्बंध होता है तो आप यह बतावो कि उसके सालेका साला उसका क्या कहलाया? साला ही कहलाया! कोई कहे कि नहीं साहब साला कैसे कहलाया? वह तो सालेका साला है। साला तो वही है जो बहनोईके ससुरालके घरका है। तो इसी ढङ्गसे नैयायिक लोग इस सम्बन्धके प्रकरणमें कह रहे हैं कि सीधा सम्बन्ध हो वह तो संबंध है और सम्बन्धका सम्बन्ध हो उससे भी सम्बन्ध है, इसको हम सम्बन्ध ही नहीं मानते। जब मनको प्राप्त अर्थका प्रकाशक सिद्ध किया जा रहा था नैयायिकोंके खिलाफ कि देखा, मनका सम्बन्ध है आत्मासे और आत्माका सम्बन्ध है सारे पदार्थोंसे, इस तरह मनने सारे पदार्थोंसे भिड़कर पदार्थोंको जान लिया। इसके निवारणके लिए यह कह रहे हैं कि मनका उन समस्त पदार्थोंसे जो सम्बन्ध बना हो उसे हम सम्बन्ध ही नहीं कहते वह तो संयुक्तसंयोग सम्बन्ध है।

सम्बन्धसम्बन्धको सम्बन्ध न माननेपर चक्षुके प्राप्यकारित्वकी असिद्धि- संयुक्त संयोग और संयुक्त समवायको सम्बन्ध न माननेकी बात रखनेपर उत्तरमें कहा जा रहा है कि सम्बन्धका सम्बन्ध जिसमें हो उसके साथ यदि सम्बन्ध नहीं मानते हो तो यों आँखोंसे रूपका ज्ञान भी नहीं बन सकता क्योंकि आँखका रूप के साथ सीधा सम्बन्ध नहीं है। नैयायिक सिद्धान्तमें आँखने रूपके साथ सीधा सम्बन्ध नहीं माना, किन्तु आँखका सम्बन्ध है चौकीके साथ और चौकीका सम्बन्ध है रूपके साथ। तो सम्बन्धका सम्बन्ध तो सम्बन्ध हा नहीं कहलाता है, तो आँखें भी रूपका ज्ञान नहीं कर सकतीं, क्योंकि चक्षुका भी रूपके साथ संयुक्त समवाय सम्बन्ध है न कि सम्बन्ध है।

चक्षुसन्निकर्षके विरोधमें मनकी प्राप्यकारिताकी सिद्धि—नैयायिक सिद्धान्त चक्षुको प्राप्त अर्थका प्रकाशक सिद्ध करनेमें बाह्येन्द्रियत्व हेतु दे रहे थे तो अब विरोधमें मनके प्राप्यकारी सिद्ध करनेके लिये इन्द्रियत्व हेतु दे रहे हैं कि चूँकि मन

भी इन्द्रिय है, न बाह्य इन्द्रिय सही अन्त: इन्द्रिय तो है। तो इन्द्रिय होनेके कारण मन भी भिड़कर पदार्थोंको जान गया। इसपर दोषनिवारणके लिये नैयायिक सिद्धान्तमें कह रहे हैं कि इन्द्रियपना यद्यपि समान है। ये स्पर्शन इन्द्रिय आदिक इन्द्रियाँ भी इन्द्रिय हैं और मन भी इन्द्रिय है। इन्द्रियपनेकी समानता होनेपर भी स्पर्शनादिक इन्द्रियाँ तो भिड़े पदार्थको जानती हैं, किन्तु मन बिना भिड़े पदार्थको जानता है। तो यहाँ भी क्यों नहीं मान लेते कि बाह्य इन्द्रियपनेकी समानता होनेपर भी अर्थात् जैसे स्पर्शन, रसना, घ्राण, स्रोत्र ये भी बाह्य इन्द्रिय हैं और चक्षु भी बाह्य इन्द्रिय है तो बाह्य इन्द्रिय यद्यपि ये पाचों हैं तिसपर भी ४ इन्द्रियाँ तो प्राप्त अर्थका प्रकाशक हैं अर्थात् पदार्थसे भिड़कर जानती हैं, किन्तु चक्षु इन्द्रिय पदार्थसे भिड़कर नहीं जानती। आप कहेंगे कि हमने तो बाह्य इन्द्रियत्वको हेतु रूपसे प्रमाणित कर दिया है, तो कहते हैं कि यहाँ भी मनको प्राप्त अर्थका प्रकाशक सिद्ध करनेमें इन्द्रियत्व हेतुको पेश कर दिया गया है। तो यदि यह कहो मनके बारेमें कि यह मन पदार्थसे भिड़कर जाना करता है इसमें तो प्रत्यक्षसे बाधा है, तो यह बात तो आँखमें भी है। आँख भी पदार्थसे भिड़कर नहीं जानती।

प्रत्यक्षके लक्षणका मूल विवाद—यहाँ मूल प्रकरण तो प्रत्यक्षके लक्षणका था, उसमें प्रसङ्गवश यह बात चल रही है और यह बहुत लम्बे समय तक चलेगी कि आँखें पदार्थसे भिड़कर नहीं जानतीं और नैयायिक यह सिद्ध करेंगे कि आँखें पदार्थको छूकर ही जानती हैं। इन दो बातोंपर अभी बहुत विवाद चलेगा। किस बातपर विवाद छिड़ गया? मूल बात यह है कि प्रत्यक्षका लक्षण यह किया गया था कि जो विशद ज्ञान हो सो प्रत्यक्ष है, विशदका अर्थ बताया था कि जो अन्य ज्ञानोंकी अपेक्षा किये बिना प्रकृत ज्ञानसे ही सीधा जान लिया जाय उसे विशद कहते हैं। इस लक्षणको मेटनेके लिये नैयायिकने यह लक्षण उपस्थित किया था कि इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्धसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष कहलाता है। तो प्रत्यक्षके ये दो लक्षण मुकाबलेमें आये। जैनदर्शनने तो रखा—'विशदं प्रत्यक्षं'। जो विशद हो सो प्रत्यक्ष। जो स्पष्ट ज्ञान है वह प्रत्यक्ष ज्ञान है। इसके मुकाबलेमें नैयायिक सिद्धान्तने यह बात रखी कि जो इन्द्रिय और पदार्थके भिड़नेसे ज्ञान उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष है। मन पदार्थोंसे भिड़कर नहीं जानता इसलिये स्मरण आदिक जो कुछ होते हैं उनमें प्रत्यक्षका लक्षण नहीं जाना। इस प्रकार मुकाबलेमें प्रत्यक्षके लक्षणमें सन्निकर्षको देनेके कारण सन्निकर्षका खण्डन किया जा रहा है कि इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्धसे उत्पन्न ज्ञानको प्रत्यक्ष मानना युक्त नहीं है। ज्ञान तो अपनी स्पष्टताके कारण प्रत्यक्ष है।

गोलकरूप चक्षुके सन्निकर्षमें प्रत्यक्ष बाधा—भैया! और भी आगे चलिये! जिस चक्षुको तुमने पदार्थसे भिड़ने वाली माना उस चक्षुका अर्थ क्या है? क्या जो यह गोलक है इसका नाम चक्षु है या कोई किरण निकलती है उसका नाम

चक्षु है ? जरा बीचमें एक बात और सुन लीजिये कि पदार्थको जाननेके लिये चक्षु पदार्थसे भिड़ता नहीं है, यदि चक्षु पदार्थसे भिड़ जाये तब तो ज्ञान और बन्द हो जाता है। चक्षुपर कागज रख दें तो चक्षुसे ज्ञान करना खतम हो गया। भिड़कर जाननेकी बात तो दूर जाने दो, पदार्थ यदि इस गोलक चक्षुसे भिड़ जाय तो नेत्रसे ज्ञान करना और खतम हो जाता है। ये चक्षु तो शरीरके प्रदेशोंमें ही ठहर रहे हैं। अगर ये गोलक चक्षु पदार्थके देशमें जाकर पदार्थको जानें तो जिस समय गोलक चक्षु पदार्थमें गया है उस समय तो आँखें ऐसी लगनी चाहिएँ कि जिन्हें देखकर डर लग जाय। दो खोलन रह जायेंगे। जैसे जिसकी आंखोंसे गटा निकल गए ऐसी अंधेकी जो हालत है वह हालत उस समय उसकी हो जायगी। ऐसी ही पक्ष्म नयन गोलक रहित आंखे दिखनी चाहिएँ, पर ऐसी किसी चाक्षुष ज्ञान करने वालेकी आँखें देखी हैं क्या ? आँखोंने सब कुछ जान रहे, पर ये नेत्र ज्योंके त्यों पूरेके पूरे सबके पास हैं ?

रश्मिरूप चक्षुकी असिद्धि—यदि यह कहो कि हम चक्षुका अर्थ किरण करते हैं, किरणरूप हैं चक्षु तो किरणोंको तो कोई प्रत्यक्षसे देख ही नहीं रहा, किरणें प्रत्यक्षसे जानी नहीं जा रही हैं। जैसे ये पदार्थ हैं और किरणरहित मालूम होते ऐसे ही ये आँखें भी किरण हैं। उनमें पदार्थका स्वरूप जैसे हमें स्पष्ट समझमें आता इस तरह किरणोंका स्वरूप तो प्रतिभासमें नहीं आ रहा। यदि किरणें भी प्रतिभासमें आयें तो फिर विवाद भी न रहना चाहिए कि चक्षु किरणका नाम है या गोलकका नाम है। जब प्रत्यक्षसे ही देखने लगे तो कोई विवाद न रहना चाहिए। जैसे हम नीले पदार्थको यह नील है ऐसा अनुभव करते हैं तो उसमें विवाद तो नहीं होता, हाँ नील ही है, इसी प्रकार रश्मिरूप चक्षुवोंको अगर हम प्रत्यक्षसे जान लें तो विवाद न होना चाहिए। चक्षु पदार्थसे भिड़कर नहीं जानता।

चक्षुप्रदेशसे बाहर चक्षुके व्यापारकी असंभवता---भैया ! देखो आँखें आँखों की जगह ठहरी हैं, पदार्थ पदार्थकी जगह ठहरा है, समयसारमें ज्ञान ज्ञेयका सम्बन्ध बतानेके लिए इस नेत्रका ही दृष्टान्त दिया है, जैसे यह दृष्टि दृश्य पदार्थसे अत्यन्त भिन्न है, न दृश्य पदार्थका कर्ता है न दृश्य पदार्थका भोक्ता है आँख यदि यह दृश्य पदार्थको करने लगे आँख तो बरसातके दिनोंमें जब चूल्हेमें लकड़ियां अच्छी तरह नहीं जलतीं तो उस अग्निको जलानेके लिए पङ्खाकी तलास क्यों करते ? तेज आँखें करके देखने लगो, आग जल उठेगी, पर ऐसा होता है क्या ? तो आँखें आगकी कर्ता नहीं हैं और न भोक्ता हैं, यदि आँखें आगकी भोक्ता बन जायें तब तो फिर आँखों को जल जाना चाहिए। तो जैसे दृश्य पदार्थोंको देखकर भी पदार्थोंसे न्यारे रहते ये नेत्र, इसी तरह यह ज्ञान विश्वके समस्त पदार्थोंको जानकर भी पदार्थोंका कर्ता और भोक्ता नहीं है, किन्तु ज्ञान उन पदार्थोंका मात्र ज्ञाता है, तो जैसे ज्ञान अपनी जगह है, ज्ञेय अपनी जगह है ऐसे ही आँखें अपनी जगह हैं, पदार्थ अपनी जगह हैं, आँखें

पदार्थसे भिड़कर जाना करें ऐसी बात यहाँ रंच मात्र भी नहीं है।

प्रकाशित पदार्थोंसे भिन्न किरणोंकी असिद्धता—दूसरी बात इस प्रकरण में थोड़े शब्दोंमें यह भी समझ लीजिए कि बैट्री जलानेपर जो किरणें नजर आती हैं वे किरणें बैट्रीकी नहीं हैं बल्बकी नहीं हैं, प्रकाशक तारकी नही हैं, किन्तु जैसे उस बैट्रीके उजेलेसे बाहरकी चीजका प्रकाश हो गया इसी तरह बीचमें पड़े हुए जो सूक्ष्म स्कंध हैं उनका भी प्रकाश हो जाता है तो प्रकाशित उन सूक्ष्म स्कंधोंकी वह लाइन है वह लाइन बैट्रीके किरणोंकी नहीं है। सूर्यकी भी जो दिखती हैं जो ये हजारों किरणें ये सूर्यकी किरणें नहीं हैं, किन्तु मध्यमें जो अनेक सूक्ष्म स्कध फैले हैं वे प्रकाशित होते हैं और हमने अपनी आँखोंकी दृष्टिमार्गसे उनकी लाइन बना दी है. वस्तुसे भिन्न किरणें कोई चीज नहीं हुआ करतीं, जो पदार्थ हैं उनका स्वरूप उनमें रहता है, आँखें पदार्थोंसे भिड़कर नहीं जानतीं। इसलिए सन्निकर्षजनाको प्रत्यक्षका लक्षण बनाना युक्त नहीं है।

चक्षु:सन्निकर्षकी असिद्धि—प्रमाण किसे कहते हैं ? इसमें सिद्धान्त तो यह है कि जो स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय कराये ऐसा ज्ञान प्रमाण है, किन्तु इसके प्रतिपक्षमें अनेक मतोंने अपनी बात रखी। इस प्रसङ्गमें सन्निकर्षको प्रमाण मानने व प्रत्यक्ष प्रमाण माननेकी बात चल रही है। सन्निकर्षवादीने प्रत्यक्ष प्रमाणको इन्द्रिय और पदार्थमें सन्निकर्षने उत्पन्न होना माना है। इसपर उनसे कहा जा रहा है कि किसीको यह समझमें ही नहीं आ रहा कि पदार्थकी जगहमें रहने वाली रश्मियोंके साथ अन्य पुरुषोंकी इन्द्रियोंका सन्निकर्ष है तब फिर किसीकी रश्मियोंका प्रत्यक्ष कैसे बने ? यदि अन्यकी रश्मियोंके साथ अन्यकी इन्द्रियोंका सन्निकर्ष हुए बिना रश्मि प्रत्यक्ष हो जाय तो अनवस्था दोष आयगा। यह किसीको भी नजर नहीं आता कि चक्षुकी रश्मियाँ पदार्थकी जगह पहुँचती हों और फिर भिड़कर जानती हों। आँख आँखकी जगह है, पदार्थ पदार्थकी जगह है. उनका सन्निकर्ष कहां नजर आता है ? यदि कहो कि अनुमानसे सिद्ध करलें तो इसी अनुमानसे या अन्यसे ? इसी अनुमानसे सिद्ध करेंगे तो इतरेतरा दोष है और अन्य अनुमानसे रश्मि सिद्ध करेंगे तो इसमें अनवस्था दोष है।

रश्मि चक्षुके माननेपर अञ्जनसंस्कारकी व्यर्थता व फुली आदिके खुद दिख जानेका प्रसङ्ग—यदि यह कहो कि आँखोंमें जो एक गोला है इस गोला में रहने वाला जो तैजस द्रव्य है उस तैजस द्रव्यसे बाहर गई हुई रश्मियोंका नाम चक्षु है, वे चक्षु अर्थात् वहिर्गत रश्मियाँ पदार्थका प्रकाश करती हैं। अर्थात् आँखोंका तो पदार्थसे सम्बन्ध नहीं होता, पर आँखोंमें रहने वाला जो तैजस द्रव्य है उस तैजस द्रव्यसे बाहर आँखोंमेंसे किरण निकलती है और उस किरणका पदार्थसे सम्बन्ध होता है, यदि ऐसा मानोगे तो फिर गोलकमें अञ्जन आदिक लगाना व्यर्थ हो जायगा।

क्योंकि उस गोलकको आँख तुम नहीं बता रहे । गोलासे जो किरण निकलती है तैजस द्रव्यकी उसे आँख कह रहे हो फिर गोलामें अञ्जनका संस्कार करना व्यर्थ है। यदि यह कहो कि गोलाके आश्रयमें वह किरण है और उस गोलकको पलकोंसे बद कर दिया तो वे किरण विषयके प्रति जा नहीं सकते। इससे वे किरणें पदाथके पास पहुँच सके इसके लिए हम आँखों को खोलते हैं, तथा घृत आदिकसे पैरोंका संस्कार करे, पैरोंमें घी आदिक लगायें तो उससे जैसे आँखोंमें बल आता है, निर्मलता होती है तो फिर उन किरणोंका आश्रयभूत जो गोलक हैं उनमें संस्कार लगाया तो किरणोंमें बल आयगा ही. व्यर्थ कैसे हुआ ? इसपर उत्तर देते हैं कि तिसपर भी तो गोलक आदिकमें लगा हुआ जो दोष है गटा, काच कामल आदिक कुछ भी लगा हुआ है, उसका प्रकाशक फिर तो बन बैठेगा। जैसे कि दीपककी कलिकामें रहने वाली जो किरणें हैं वे कलिकामें लगी हुई किरणें क्या कलिकाको प्रकाशित नहीं करतीं ? करती हैं, इसी प्रकार गोलकमें जो भी कामल आदिक दोष बने उसे भी प्रकाशित कर देना चाहिए। यदि ये किरणें (आँख) पदार्थसे भिड़कर जानती हैं तो भी यही दोष है।

व्यक्तिरूप चक्षुमें फुली आदिकके असम्बन्धकी प्रत्यक्षविरुद्धता—इस गटाके साथ कामल काँच आदि रोगके साथ चक्षुका सम्बन्ध नहीं हैं यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि यह बतलावो कि किस चक्षुके साथमें कांच कामल दोषका सम्बन्ध नहीं है, आँखोंमें जो एक रोग होता है जैसे फूली है, मोतिया बिन्दु है, कांच कामल है तो उनको ये आँख क्यों नहीं देख पाती ? इनसे क्या आँखका सम्बन्ध नहीं ? यदि यदि कहो सम्बन्ध नहीं है तो उस आँखका क्या स्वरूप मानते हो जिसमें कांचादिका सम्बन्ध नहीं है, यदि उसे व्यक्तिरूप चक्षु समझा कि जो गटा है ना काला और सफेद, इसका नाम आँख है और इसका सम्बन्ध उस कांच कामलसे नहीं है, तो यह बात प्रत्यक्षविरुद्ध है, दुनिया देख लेती है दूसरे की आँखमें कि इसकी आँखमें अमुक रोग है, तो इस रोगके साथ आँखका सम्बन्ध तो है।

शक्तिरूप आँखकी व्यक्तिरूप चक्षुसे भिन्नदेशताकी असिद्धि—यदि कहो कि शक्तिरूप जो आंख है उसका सम्बन्ध नहीं है कांच कामलमें तो वह शक्तिरूप आंख क्या व्यक्तिरूप आँखसे अलग रहती है, या वहीं रहती है ? अलग रहती तो कह नहीं सकते क्योंकि शक्ति क्या किसी व्यक्तिसे अलग रहती है ? शक्ति निराधार नहीं रहती। कोई भी शक्ति किसी अन्य पदार्थके आधार न रहेगी। जिस पदार्थकी शक्ति है उस ही पदार्थमें रहती है। तो इस व्यक्तिरूप आँखकी शक्ति आँखकी जगह ही मानना होगा और जब आँखकी जगह ही मान लिया तो सम्बन्ध तो है ही। तब फिर आँखसे सम्बन्ध हुआ और काँच कामलको आँख जानती नहीं तब यह कैसे कहते कि आँख पदार्थसे भिड़कर ही पदार्थको जानती है।

रश्मिरूप आँख माननेपर फुली आदिके सम्बन्ध व खुद जाने जानेका प्रसङ्ग—यदि कहो कि वह आँख जो आँखमें लगे हुए रोगसे भिड़ी नहीं है. वह किरणरूप आँख है तो उसका भी तो उस रोगसे सम्बन्ध है। जैसे लालटेन ले लो। उसके अन्दर ज्योति जल रही है। अब उस ज्योतिकी किरणें जो बाहर निकलती हैं क्या वे काँचको बिना छुवे निकलती हैं ? ऐसी बात तो नहीं है, इसी तरह आँखकी किरणें आँखपर लगे हुए काँच कामल धुन्ध आदिक रोगको छोड़कर क्या बाहर पहुँच जाएँगीं ? उनसे भिड़कर ही तो जाएँगीं ! तो जब रश्मिरूप किरणें उन काँच कामल आदिक रोगोंसे भिड़कर जानती हैं तो उसे जानती क्यों नहीं ? और, यदि आँखें पदार्थको छूकर जानने लगें किसी पदार्थको, तो आँखमें अंजन लगा लीजिए, फिर वह अंजन कैसा लगा, फैला है अथवा ठीक लगा है ? यह देखनेके लिए दर्पण उठानेकी क्या जरूरत ? जब आँखें पदार्थसे भिड़कर जानती हैं तो आँखपर ही तो अंजन लगा है फिर ये आँखें उस अंजनको सीधा प्रत्यक्ष क्यों नहीं जान लेतीं ? पर जानती तो नहीं ! इससे यह सिद्ध है कि आँखें पदार्थसे भिड़कर नहीं जानतीं।

दृश्यानुपलब्धि होनेसे रश्मिरूप चक्षुकी असिद्धि—चक्षुःसन्निकर्ष सिद्ध ही नहीं हो सकता है। जो एसा सुझाव दिया गया कि इस गोलकसे निकलकर पदार्थ भिड़कर वे किरणें पदार्थको प्रकाशित करती हैं तो पदार्थके समीप जाने वाले उन तैजसोंका किरणोंका जिसमें रूप और स्पर्श विशेष पाया ही जाता है वह लोगोंको क्यों नहीं दिखता ? उनकी उपलब्धि होनी ही चाहिए। जैसे सूर्यकी किरणें सबको नजर आती हैं, ये किरणें हैं तो यों आँखोंसे वे किरणें फूटती हैं और वे किरणें पदार्थको छूकर जानती हैं तो उन किरणोंकी उपलब्धि क्यों नहीं होती। क्यों यहाँ वहाँ लोगोंको मालूम होता कि ये इसकी किरणें हैं ? उनकी उपलब्धि हो जाना चाहिए, पर उपलब्धि तो नहीं है। इससे दृश्य की अनुपलब्धिसे यह सिद्ध होता है कि आंखमें किरणें नहीं हैं। किरणें तो दृष्ट चीज हैं लोग उन्हें देखते हैं, जब किरणें नजर नहीं आती हैं आँखोंसे निकली हुई तो किरणोंकी बात करना एक दुराग्रह है। शायद यह कहो कि वे किरणें अदृष्ट हैं, किसीको दीखती नहीं हैं क्योंकि उनमें रूप और स्पर्श उद्भूत नहीं है तो यह बात कहना ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा कोई तैजस द्रव्य नहीं है जिसमें रूप और स्पर्श प्रकट न हो। कहीं देखा है कोई तैजस चीज हो, चमचमाती हो, गर्मी उत्पन्न करने वाली चीज और उसमें रूप भी नहीं और स्पर्श भी नहीं, ऐसा कोई तैजस द्रव्य नहीं होता। ये चक्षुकी किरणें अगर तैजस द्रव्य हैं तो वे लोगोंको दिख जाना चाहिए।

उपहासास्पद तर्कोंसे चक्षुःसन्निकर्षकी असिद्धि—शायद यह कहो कि जैसे भानीमें भासुर रूप लोगोंको प्रतीत नहीं होता और स्वर्णमें उष्ण स्पर्शका उद्भव नहीं है और है वह चीज एक तैजस द्रव्य तो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि उन दोनों

की अनुभूति असिद्ध है। यद्यपि अतप्त जलमें भासूर रूप नहीं है और न सुवर्णमें उष्ण स्पर्श अव्यक्त है। तथापि जलमें व सुवर्णमें भासुररूप और उष्ण स्पर्शकी प्रतीति भी होती है जब जल व सुवर्ण तप्त हों। जल व सुवर्णमें उष्ण स्पर्शकी अनुभूति है यह बात वहाँ भी असिद्ध है। जब तप्त सुवर्ण व जलमें भासुरत्व अथवा उष्ण स्पर्श जाना गया है? तो प्रत्येक जलमें सुवर्णमें उष्णत्व शक्तिका अनुबोध किया जाता है, जो बात दिख जाती उसके अनुसार उसकी ही अदृश्य अवस्थामें उसकी कल्पना होती है अन्यथा तो हम यह भी सिद्ध करने लगेंगे कि रात्रिमें सूर्यकी किरणें तो हैं, पर रात्रि को दिखती नहीं है लोगोंको इसका फिर क्या इसाज है? जो चीज उपलब्ध सिद्ध कर लोगे तो हम कहेंगे कि रात्रिमें सूयकी किरणें हैं पर वहाँ रूप और स्पर्श प्रकट नहीं होता इसलिए लोगोंको दिखता नहीं। जैसे आँखकी किरणें। यों तो अटपट कुछ भी सिद्ध किया जा सकता है। उसकी सिद्धिमें हम ऐसा अनुमान बना देंगे कि इन बिल्लियोंको जो कि रात्रिमें देखती हैं उन्हें प्रकाशपूर्वक दिखता है, सूर्यकी किरणें रात को भी हैं तभी तो बिल्लियोंको दिखता है और सूर्यकी किरणें रात्रिमें होकर भी वे अदृश्य हैं। यों तो कुछ से कुछ अटपट सिद्ध किया जा सकता है। इससे सीधी बात है कि चक्षु चक्षुकी जगह हैं, पदार्थ पदार्थकी जगह हैं, ऐसा निनित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है कि चक्षुके निमित्तसे यह आत्मा दूर देशमें ठहरे हुए पदार्थको भी जान लेता है, वहाँ सन्निकर्षकी वजहसे प्रमाण नहीं है किन्तु ज्ञान ही ऐसा स्पष्ट हो रहा है इस कारणसे वह प्रमाण है।

चक्षकी रश्मिरूपताका अभाव— नैयायिक लोग चक्षुःसन्निकर्ष मानते हैं याने आँखका और पदार्थका सम्बन्ध होता है तव ज्ञान होता है, यों मानते हैं। तो उनसे पूछा गया था कि जिस आँखका पदार्थसे सम्बन्ध होता है उस आंखका स्वरूप क्या है? तो उन्होंने बताया बहुत वाद विवादके बाद कि आँखसे जो किरण निकलती है वह किरण चक्षु है और वह किरण पदार्थसे भिड़ती है तो पदार्थका ज्ञान होता है। इसके सम्बन्धमें चर्चा चली आ रही है कि आँखसे किरण निकलते किसीके भी नहीं दिखाई दी। तो जो पदार्थ दिख सकता है, और न दिखे तो इसका अर्थ है कि वह चीज नहीं है। सूर्यकी किरणें दिखती हैं दीपककी किरणें दिखती हैं, आँखसे भी किरण निकलती हो तो लोगोंकी दिखनी चाहिए, और न दिखनेपर भी जबरदस्ती मानोगे कि है चक्षुकी किरण, तो हम यों कह बैठेंगे कि रातमें सूर्यकी किरणें हैं, न दिखनेपर भी जब उनकी सत्ता मानते हो तो रातमें सूर्यकी किरणें भी मान लो, और ऐसा अनुमान भी बना वैठोगे कि बिलाव आदिकको आंखोंसे जो रूप दिखाई देता है वह बाहरी प्रकाश पूर्वक दिखाई देता है। बाहरी प्रकाश है तब बिल्लीको रातमें दिखाई देता है। जैसे हम लोगोंको प्रकाश हो तो दिखाई देता है इसी प्रकार रातमें भी बिलावको प्रकाश है, सूर्यकी किरणें हैं तब दिखाई पेता है। तो यों रातको दिन की भी किरणें माननी पड़ेंगी। यदि यह कहो कि बिलावकी आँख खुद तेजस्वरूप हैं

और उस हीसे रूपदर्शन होता है, वहाँ बाहरी प्रकाश माननेकी जरूरत नहीं है। तो यों हम भी कह देंगे कि मनुष्योके भी आखमें तेज है, फिर मनुष्योंको भी बाह्य प्रकाश की जरूरत नहीं है, सो मनुष्य भी प्रकाश बिना देख लें। मनुष्य प्रकाश बिना नहीं देखते और बिल्ली प्रकाश बिना देख ले यह बात क्यों हो? प्रकाश मनुष्यको भी चाहिए बिलावको भी चाहिए अगर बिलावको न चाहिए तो मनुष्यको भी न चाहिए। अगर आँखकी किरण मानते हो तो ये सब दोष आते हैं।

चक्षुमें तैजसत्वकी असिद्धि – अब शङ्काकार कहता है कि जो बात जिस तरह देखी जाती है उसकी उस प्रकार कल्पना की जाती है। हम लोगोंको तो चाक्षुष तेज भी चाहिए और सूर्यका भी, तब ज्ञान बनता है। तो हम लोगोंका ज्ञान उस ही प्रकार माना जायगा। और, बिलावको केवल चाक्षुष तेजसे ही दीखता है इसलिए उसका ज्ञान किरणोंपूर्वक ही माना जायगा, आंखकी वजहसे ही देख लेते हैं वे, तो उत्तरमें कहते हैं कि तो क्या मनुष्योके नेत्रमें किरणोंका दर्शन होता है? नहीं होता है। यदि अनुमानसे कहो तो हम रातमें सूर्यकी किरणें हैं उसका भी अनुमान कर बैठेंगे। जैसे दिनमें सूर्यकी किरणें हैं क्योंकि यदि किरणें न होतीं तो दिख नहीं सकता था। इसी प्रकार यह भी कह सकते हैं कि रातमें सूर्यकी किरणें है, न हों तो बिलाव आदिक देख नहीं सकते। तो यों रातमें सूर्यकी किरणें भी मान बैठें। रातमें नहीं हैं सूर्यकी किरणें क्योंकि दिखता नही और इसी हेतुसे न आंखमें किरण है। कोई कहे कि रातमें सूर्यकी किरणें नहीं है क्योंकि यदि होतीं तो मनुष्योंको भी दिखना चाहिए था। यह बात युक्त नहीं है क्योंकि अपनी अपनी जूदी जुदी शक्तियां हैं। दिनमें किरणें रहती हैं और उल्लूको नहो दीखता। तो सबकी अपनी अपनी योग्यता है। उल्लूको दिखनेमें प्रतिबन्धक सूर्यका आलोक प्रकाश है। हम लोगोंका दिखनेमें प्रतिबन्धक अन्धकार है। अंधकार होगा तो पदार्थ न दिखेगा। जैसे रात्रिमें सूर्यकी किरणें नहीं हैं क्योंकि उनकी उपलब्धि नहीं है इसी प्रकार नेत्रोंमें भी किरणें नहीं होतीं क्योंकि उनकी उपलब्धि नहीं है।

किसी भी प्रकार चक्षुका अर्थसे सम्बन्धकी असिद्धि – शायद यह कहो कि जैसे बहुत दूर भींटपर प्रदीपका प्रकाश पहुंचता है तो प्रदीपकी किरणें भींटपर तो नजर आती हैं पर बीचमें नजर नहीं आतीं तो इसी प्रकार नेत्रकी किरणें भी नजर नहीं आती। यह प्रश्न ठीक नहीं है क्योकि दीपककी किरणें बराबर बीचमें भी हैं और कोई पदार्थ आ जाय तो वह प्रकट हो जाता है। तो जैसे दीपककी किरणें बीच में न दिखीं सही, पर भींटमें तो दिखलाई दीं। इसीं प्रकार नेत्रके किरण बीचमें नहीं दीखते, मगर जो चीज देखी जा रही है उसपर तो किरण दिख जाना चाहिए। यों जो बात नहीं है वस्तुमें, उस वातको माननेपर बहुत कुछ अदल बदलकर बातें बनानी पड़ती हैं। नेत्रमें किरण नहीं है, ये नेत्र तो अपनी जगह ही बैठे हुए निमित्त बन जाते

हैं दूरमें रहने वाले पदार्थके ज्ञानमें। जो चीज है नहीं, दिखती नहीं उसको तुम अगर जबरदस्ती सिद्ध करोगे तो रात्रिमें सूर्यकी किरणें भी सिद्ध करनी पड़ेंगी। इससे इन्द्रियका सन्निकर्ष होनेसे ही प्रत्यक्ष होता है, ऐसा कहना युक्त नहीं है। वह ज्ञानकी विशेषता है कि कोई ज्ञान पदार्थको एकदम स्पष्ट जान लेता है तो वह ज्ञान प्रत्यक्ष है प्रत्यक्ष ज्ञान वह है जो विशद हो, स्पष्ट हो, यह ज्ञानकी विशेषता है। इन्द्रियके कारण से बात बनती हो सो नहीं है। इन्द्रिय तो मात्र निमित्त कारण हैं। इस प्रकार यहाँ स्पष्ट ज्ञानको प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध किया जा रहा है।

स्वरश्मिसम्बद्धार्थ प्रकाशकत्व हेतुसे रश्मियोंकी सिद्धिका अभाव— जिसका यह मंतव्य है कि आँख अपनी किरणोंसे जब पदार्थको छू लेती है तब पदार्थका ज्ञान होता है, वह अनुमान बनाता है कि चक्षु अपनी किरणोंसे संबधित अर्थको ही प्रकट करता है क्योंकि तैजस होनेसे प्रदीपकी तरह। जैसे कि दीपक अपनी किरणोंसे पदाथको छू ले तब तो पदार्थका प्रकाश करता है। इसी तरह ये नेत्र भी तैजस हैं इस कारण अपनी किरणोंसे पदार्थको छू ले तब पदार्थका दिखना होता है। इसपर उनसे पूछा जा रहा है कि स्वरश्मिसम्बन्धार्थ प्रकाशकत्व जो इसका हेतु दिया है इस हेतुसे क्या तुम चक्षुकी किरणें सिद्ध करना चाहते हो या किसी प्रमाणसे सिद्ध हुई उन किरणोंका पदार्थसे सम्बन्ध होना सिद्ध करना चाहते हो? यदि किरणें सिद्ध करना चाहते हो तो इसमें प्रत्यक्षसे बाधा है। मनुष्य और महिलावोंके नेत्र जितने दीखते हैं वे प्रत्यक्षसे किरणरहित दीखते हैं, नेत्रोंसे निकलती हुई किरणें किसीके भी नहीं दीखतीं। यदि यह कहो कि वे किरणें सूक्ष्म हैं इस कारण प्रत्यक्षसे बाधा न आयगी। तब कहते हैं कि इस तरह तो कुछसे भी कुछ सिद्ध कर दिया जा सकता है। हम यह कहने लगें कि पृथ्वीकी भी किरणें निकलती हैं और अनुमान बना देंगे कि पृथ्वी आदिक ये सब पदार्थ किरण वाले हैं क्योंकि सत्त्व है उनमें। जैसे प्रदीप। प्रदीपमें सत्त्व है ना अस्तित्त्व है ना, और उसमें किरणें निकलती हैं, ऐसे ही पृथ्वीमें भी सत्व है, अस्तित्व है उससे भी किरणें निकलती हैं ऐसा भी सिद्ध कर देंगे, क्योंकि जैसे तैजसपना किरणोंसे व्याप्त है प्रदीप तुमने देखा है इस तरह सत्त्व और सकिरणता भी प्रदीपमें व्याप्त है तो जैसे तुम मनुष्योंकी आँखोंमें किरणें सिद्ध करते हो उस तरह हम पाषाण, जमीन, मिट्टी आदिक सबमें आँखकी किरणें सिद्ध कर देंगे। अनुमान ही तो है जैसा चाहे बनालें। यदि यह कहो कि पृथ्वी आदिकमें किरणपना सिद्ध करनेमें प्रत्यक्ष विरोध है, कहाँ किरणें दिखती हैं? तो कहते हैं कि ऐसा ही विरोध इन आँखकी किरणोमें आने लगता है। आँखकी किरणें कहाँ दीखती हैं? आँखकी किरणें किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं होतीं।

रश्मि सिद्ध करनेके लिये नक्तंचरोंके दृष्टान्तकी अयुक्तता— अब शङ्काकार कह रहा है कि बिलाव आदिककी आंखोंमें किरणें प्रत्यक्षसे सिद्ध होती हैं,

तब किरणोंका विरोध कैसे ? समाधान—प्रथम तो यह बात है कि बिल्लीकी आँखोंमें भी किरणें नहीं हैं, चमकती हुई मालूम होती हैं, और मान लो थोड़े समयको कि बिल्लीकी आँखोंमें किरणें हैं तो बिल्लीकी आँखोंमें है तो रहने दो बिल्लीकी आँखोंमें किरणें होनेसे मनुष्यकी आँखोंमें किरणें हो जायें यह तो नियम नहीं है, पदार्थ हैं, जहाँ हैं सो हैं। यदि बिलावकी आँखोंमें किरणें प्रतीत होती हैं तो उससे मनुष्यकी आँखोंमें क्या आ गया ? जुदी जुदी दो बातें हैं और फिर भी तुम जबरदस्ती मानो कि बिल्लीकी आँखमें किरणें प्रतीत होती हैं इससे मनुष्यकी आँखोंमें भी किरणें सिद्ध हो जायेंगी। तो इस तरह तो हम यों भी कह देंगे कि चूँकि स्वर्णमें पीलापन है, इसलिये कपड़ा, घड़ा आदिकमें भी स्वर्णत्व आ जाय। जब बिल्लीकी आँखोंमें किरण होनेसे मनुष्यकी आँखोंमें किरणें हम जान लें तो स्वर्णमें पीतपना होनेसे स्वर्णत्व कपड़ा, घड़ा आदिक सबमें आ जाय, यह सिद्ध कर दिया जायगा। यदि कहो कि इसमें तो प्रत्यक्षसे बाधा है। अरे स्वर्णमें ही स्वर्णत्व है, कपड़ा आदिकमें कैसे हो ? ऐसे ही तो यहाँ यदि बिलावकी आँखोंमें किरणें हैं तो रहो, मनुष्यकी आंखोंमें तो वे किरणें न आ जायेंगी। और, प्रथम तो बात यह है कि न बिलावकी आंखोंमें किरण है न मनुष्यकी आँखोंमें किरण है। दूसरा दोष यह है कि बिलाव आदिककी आँखोंमें अगर चमकपना देखा जाता है और उससे अगर मनुष्यकी आंखोंमें भी तुम तैजसपना सिद्ध करोगे तो गाय आदिककी आँखोंमें कालापन देखा जाता है और मनुष्य आदिकको आंखोंमें सफेदी नजर आती है तो गाय आदिककी आंखोंमें पृथ्वी भी बन बैठी और मनुष्यकी आंखें जलकी बन बैठी और बिलावकी आँखें आपकी मान लें। तैजस गायने अग्निका गुण। बिलावकी आंखोंमें पीतपन होनेसे तुम किरणें मानते हो तो गालीकी आंखें काली हैं उसे भी पृथ्वी मान लो। मनुष्यकी आंखें सफेद हैं तो तुम मान लो जल की आंखें। और फिर जिसमें चमककी प्रभा नहीं है ऐसी आंखोंमें तैजसपना सिद्ध कैसे करोगे ? यदि इसी अनुमानसे करें तो इयरेतरा दोष है। अन्य अनुमानसे करें तो अनवस्था दोष है अर्थात् जैसी आंखें मनुष्यकी हैं तैसी सबकी हैं और आँखोंमें ऐसा गुण है कि उसके निमित्तसे यह जीव दूरवर्ती पदार्थोंको जान लेता है। इसमें किरणें नहीं हैं, इस कारण चक्षुसन्निकर्ष ठीक नहीं बैठता। प्रमाण तो ज्ञान ही है। जो विशद ज्ञान है सो प्रत्यक्ष प्रमाण है। आंखका पदार्थसे सम्बन्ध बने फिर वह प्रत्यक्ष कहलाये यह बात सिद्ध नहीं है।

चक्षुके तैजसत्वकी असिद्धि—शंकाकार कह रहा है कि चक्षु तैजस है क्योंकि चक्षु रूप आदिकमेंसे केवल रूपका ही ग्रहण करता है, प्रदीपकी तरह। जैसे प्रदीप पदार्थोंके केवल रूपका ही प्रकाशक है अतः वह तैजस है। सो इसी प्रकार ये आंखें भी जब रूप, रस, गंध, स्पर्शमेंसे सिर्फ रूपका ही प्रकाश करती हैं तो चक्षु तैजस है इस प्रकारके अनुमानसे चक्षुमें तैजसपनेकी सिद्धि हो जाती है। जब चक्षु तैजस हैं तो उसकी किरणें निकलती हैं और किरणें पदार्थमें आती हैं तब ज्ञान होता

है। इस प्रकार चक्षुसन्निकर्ष प्रत्यक्ष प्रमाण है यह बात सिद्ध हो जाती है। इस आशङ्काका समाधान करते हैं कि यह बात सङ्गत नहीं है क्योंकि यहां भी जो आंखकी गोलक है जिसमें न भासुररूप है न उष्ण स्पर्श है, उस गोलमें अगर तैजसत्वकी सिद्धि कर रहे हो तो उसमें तो प्रत्यक्षसे बाधा है और फिर इस अनुमानसे भी बाधा आती है। चक्षु तैजस नहीं है क्योंकि आंख अन्धकारको भी ग्रहण करती है। जैसे आंखमें प्रकाशका ग्रहण होता है इसी प्रकार अन्धकारका भी ग्रहण होता है। देखकर ही तो लोग कहते हैं कि यहां तो अँधेरा है अँधेरेमें कोई चीज नहीं दिखती। कोई चीज तो नहीं दिखती पर अँधेरा तो दिख रहा है। तो आँख तैजस नहीं है क्योंकि वह अंधकारका ग्रहण करती है। जो तैजस होता है वह अंधकारका प्रकाश नहीं करता। जैसे आलोक प्रदीप ये तैजस हैं तो अन्धकारका ग्रहण नहीं करते, इस अनुमानसे भी बाधा आती है। इस कारण चक्षु तैजस हैं यह बात सिद्ध नहीं हो सकती।

आलोकापेक्षा होनेसे चक्षुका अतैजसत्व—सीधी सी एक यह भी बात समझ लेना चाहिए कि दीपककी तरह यदि आँखें तैजस बन जायें तो जैसे दीपकको आलोककी अपेक्षा नही रहती अर्थात् कोई दीपक किसी दीपककी अपेक्षा तो नहीं करता कि दूसरे दीपकका संयोग मिले तब यह दूसरे पदार्थका प्रकाश करे किन्तु आँखें आलोक की अपेक्षा रखती हैं. इससे सिद्ध है कि चक्षु तैजस नहीं है, यदि यह कहो कि हम इस गोलकको चक्षु नहीं मानते किन्तु जो किरणें निकलती हैं हम तो सिर्फ किरणोंको चक्षु मानते हैं, तो भाई उन किरणोंको सिद्ध करने वाला तो कोई प्रमाण है ही नहीं, अनुमानसे तो सिद्ध हो नहीं सकता प्रत्यक्षसे किरणें प्रतीत होतीं नहीं हैं। तो न यह प्रत्यक्षसे सिद्ध होता कि आँखें किरणरूप हैं और न अनुमानसे सिद्ध होता कि चक्षु किरणरूप हैं। चक्षुको तैजस सिद्ध करनेके लिये जो यह हेतु दिया था कि चक्षु तैजस है क्योंकि रूप रस आदिक में वह केवलरूपको ही प्रकाशित करता है, तो यह जो हेतु है वह चन्द्र है, रत्न है, माणिक है इनके साथ अनेकान्तिक हो जाता है। चन्द्रमा रूप का तो प्रकाश करता है, पर तैजस नहीं इसी प्रकार रत्न है वह रूपका तो प्रकाश करता है किन्तु वह तैजस नहीं माना गया है। वह तो ठंडा है। यदि कहो कि हम उनको भी पक्षमें ले लेंगे याने उन्हें तैजस कह डालेंगे सो ठीक नहीं इसमें तो प्रत्यक्षसे बाधा है और फिर यों तो भी अनुमान सदोष नहीं हो सकता। जो दोष देगा उसीको पक्षमें ले लिया करेंगे। इससे यह बात भी युक्त नहीं जची कि जो केवलरूपका प्रकाशक हो वह तैजस होता है।

अतैजसमें तैजसत्वसिद्धिका व्यर्थ दुराग्रह—ऐसा भी नहीं कह सकते कि जल यद्यपि तैजस नहीं है, पर उसके भीतर छिपा हुआ तो तेज द्रव्य है वह ही खुदका प्रकाशक होता है। रत्नमें जो तैजसद्रव्य पड़ा है वह रूपका प्रकाशक होता है, ऐसा कहनेपर तो सभी जगह हेतु निष्फल हो जायगा। क्योंकि हम जिस चाहेमें कह बैठेंगे।

पृथ्वी है, पाषाण है उसमें भी तेज द्रव्य छिपा है जिससे किरणें निकलती हैं ऐसा भी कह बैठेंगे। जो बात देखी गई उसकी तो सिद्धि हो सकती है जो बात प्रत्यक्षसे व अनुमानसे बाधित है उसकी सिद्धि नहीं है, और किसी पदार्थमें भीतर तैजसद्रव्य छिपा है यों कहनेकी कोशिश करेंगे तो इसमें दृष्टान्त न मिलेगा। हम कहेंगे कि प्रदीपमें प्रकाश नहीं है, किरणें नहीं हैं. यदि ऐसा कहो कि इसमें तो प्रत्यक्ष बाधा है, दीपक गरम है, किरणें निकलती हैं तो ऐसी प्रत्यक्ष बाधा उधर भी है, रत्न आदिकमें भी तैजस द्रव्य नहीं हैं इससे यह निर्णय रखें कि आँखें पदार्थसे भिड़कर नहीं जानती हैं और न आँखोंमें किरणें हैं, आखें स्वयं अलग रहकर उसके द्वारा यह आत्मा पदार्थोंको जान लेता हैं।

चक्षुके तैजसत्वकी सिद्धिमें दिये गये रूपप्रकाशत्व हेतुका व्यभिचार— चक्षु सन्निकर्षको प्रमाण मानने वालोंने यह अनुमान बनाया था कि चक्षु तैजस द्रव्य हैं क्योंकि रूप, रस, गंध आदिकमेंसे सिर्फ रूपको ही प्रकट करते हैं. जैसे दीपक तैजस है क्योंकि वह पदार्थोंको प्रकाशित करता है सो रूप, रस आदिकमेंसे केवल उसके रूपको ही प्रकट करता है, जो केवल रूपका प्रकाश करे वह तैजस होता है. जैसे सूर्य है, दीपक है बिजली है, ये रूपको ही तो प्रकट करते हैं। रस गंधको तो नहीं प्रकट कर सकते। इसी प्रकार ये चक्षु सिर्फ रूपको जान सकते हैं इसलिए चक्षु तैजस हैं, ऐसा जो हेतु बनाया था "रूपप्रकाशकपन" तो उस समयमें स्याद्वादी कह रहे हैं कि रूपका प्रकाश करने का अर्थ क्या है ज्ञान उत्पन्न करना है। रूपको प्रकट करनेका अर्थ है ज्ञानको प्रकट करना, और ज्ञानाद्वैतवादियोंने ऐसा माना है कि ये जो पदार्थ हैं घट पट आदिक, ये रूपका ज्ञान उत्पन्न किया करते हैं। तो देखो ज्ञानको तो उत्पन्न इन पदार्थोंने भी कर डाला। ज्ञानाद्वैतवादी मानता है ऐसा कि ये पदार्थ ज्ञानको उत्पन्न किया करते हैं। तो पदार्थोंने भी ज्ञानको उत्पन्न किया मगर पदार्थ तैजस तो नहीं है तो यहां हेतु व्यभिचारी बन गया। जो जो रूपका प्रकाश करे वह तैजस है ऐसा कहा था उन्होंने। तो रूपका प्रकाश करनेका अर्थ है रूपका ज्ञान उत्पन्न करना। तो रूपक ज्ञानको उत्पन्न ये पदार्थ भी करते हैं उनके सिद्धान्तमें। तो पदार्थोंने ज्ञान उत्पन्न किया रूपका, किन्तु घटपटादिक पदार्थोंमें किरण नहीं है इसलिये हेतु सदोष हुआ।

हेतुमें करणत्व आदिका जोड़ करनेपर भी व्यभिचार—यदि कहो कि हम उसमें इन्द्रिय होनेपर इतना अर्थ और लगायेंगे अर्थात् जो इन्द्रिय होकर रूपका ही प्रकाश करे वह तैजस होता है। तो ऐसा विशेषण लगानेपर तो प्रकाश और पदार्थमें सन्निकर्षके साथ चक्षु और रूपके संयुक्त समवाय सम्बन्धके साथ व्यभिचार आता है तो उससे सदोष हो जायगा अर्थात् चक्षुका और रूपका तो है संयोगसम्बन्ध और रूपका है उस पदार्थमें समवाय सम्बन्ध। वे लोग पदार्थमें रूपका तो समवाय सम्बन्ध मानते हैं, समवाय सम्बन्धका अर्थ है जैसा कि तादात्म्य होता है तन्मात्र, रूपस बन्ध

और पदार्थका आँखके साथ हुआ संयोग सम्बन्ध। तो इस प्रकार सन्निकर्ष तो बन गया करण, परन्तु वह पदार्थ तैजस नहीं रहा इसलिए वहाँ दोष उत्पन्न होगा। यदि उसमें एक विशेषण और लगा दोगे कि द्रव्यत्वे सति अर्थात् जो द्रव्य होनेपर, करण होनेपर रूपका प्रकाश करे सो तैजस है, तो फिर चन्द्रमाके साथ दोष हो गया। चन्द्रमा द्रव्य भी है और करण भी है, रूपका प्रकाश भी करता है परन्तु तैजस नहीं है। इससे जो बात जहाँ नहीं है उसे सिद्ध करनेमें विवेक नहीं है। सीधा मान लो कि ये चक्षु इन्द्रिय अपनी ही जगह रहकर उसमें ऐसा ही निमित्तका सम्बन्ध है कि बाह्य पदार्थोंके ज्ञान करानेके कारण बनता है। आँखें पदार्थसे भिड़ें फिर पदार्थका ज्ञान करें ऐसी बात नहीं है।

तैजस द्रव्यकी रूपप्रकाशकत्वका भासुररूप व अभासुररूपके विकल्पों में खण्डन—और भी बतलावो कि जो तैजस द्रव्य रूपका प्रकाश करने वाला है वह भासुररूप है या अभासुररूप? यदि कहो कि भासुर है तो उष्ण जलके साथ जो मिला जुला है तैजस द्रव्य वह भी पदार्थका प्रकाश करने वाला बन बैठेगा। क्योंकि भासुररूप उस जलमें उष्णता आ गई और वह तैजस बन गया। अगर कहो कि उसमें रूपका उद्भव नहीं है, रूप प्रकट नहीं हो रहा तो इसी तरह तो आँखकी किरणें भी प्रकट नहीं हैं। तो उसकी भी सिद्धि मत मानो! किरणें पदार्थको प्रकाशित करती हैं यह बात इसलिए सिद्ध न होगी। जिसके रूप प्रकट नहीं हुए ऐसे जो तैजस द्रव्य हैं वे रूपके प्रकाशक हो ही नहीं सकते। कौनसा द्रव्य है कि जिसमें रूप प्रकट हो नहीं और बाह्यमें पदार्थोंको प्रकाशित करदे? दृष्टान्त भी ठीक नहीं बैठता। नेत्रों में किरणें नहीं हैं और इससे यह भी सिद्ध होता कि चक्षु रूपका प्रकाशक नहीं हो सकता क्योंकि उसमें रूप प्रकट ही नहीं हुआ। किरणोंका स्वरूप आया ही नहीं है। जैसे जलमें जिस अग्निका संयोग है, वह अग्नि तैजसरूपको प्रकट नहीं करता क्योंकि वहाँ रूपका उद्भव नहीं है। यदि यह कहो कि जो द्रव्य रूपको प्रकट करता है वह द्रव्य अभासुर रूप है तो अभासुर भी द्रव्य जब रूपका प्रकाश करने वाला हो गया तो गरम जलमें जो तैजस है, अग्नित्व है वह भी अभासुर है, वह भी रूपका प्रकाश करने वाला हो जावे। यदि यह कहो कि नहीं, जब भासुरतामें उस प्रकार का रूप किरण प्रकट हो जाय तो उसका प्रकाश होता है तो फिर नेत्रमें किरणें कैसे प्रकट हों? फिर नेत्र भी पदार्थका ज्ञान कराने वाला नहीं हो सकता। इससे कुछ भी विशेषण लगाकर रूपपने हेतुको तुम सही बनाना चाहते हो तो नहीं बन सकता है। चक्षु एक करण है और उसमें ऐसी योग्यता है कि वह रूपका ही प्रकाश करनेका कारण है।

इन्द्रियोंमें ज्ञाननिमित्तत्त्वकी योग्यता—ज्ञाननिमित्तत्त्वकी ये विशेषतायें इन्द्रियोंकी हैं। ये सब इन्द्रियां अपने-अपने विषयको ही जानती हैं, स्पर्शन इन्द्रिय स्पर्शको जानेगी, उष्ण, शीत, चिकना, रूखा आदिक जाननेमें स्पर्शन इन्द्रिय कारण है,

रूपके जानेमें रसना इन्द्रिय कारण है गंधके जाननेमें घ्राण इन्द्रिय कारण है और शब्द जाननेमें श्रोत्रइन्द्रिय कारण है तैजस होनेके कारण चक्षुरूपको जाने यह बात नहीं है. इसी तरह घ्राण इन्द्रिय पार्थिव हो तब गधको जानती है यह बात नहीं है रसना इन्द्रियमें जल तत्त्वसे कुछ निर्माण हुआ हो इसलिए रसको जानती है यह बात नहीं है। स्पर्शनेन्द्रिय वायुतत्त्वसे बनी हो इस कारण स्पर्शको जानती है। यह बात नहीं है। ये सब इन्द्रियां हैं और कायके अङ्ग हैं। उनमें ऐसी योग्यता है कि वे पदार्थों में रहे हुए रूप, रस, गंध, स्पर्श शब्दों को जाननेके कारण होते हैं, द्रव्यत्व व करणत्व का सहारा लोगे तोसम्बन्ध आदिककी तरह जो द्रव्य अतैजस है किन्तु द्रव्य रूप भी है, कारणरूप भी है ऐसा यह गोलक ही रूपके ज्ञानको उत्पन्न करने वाला क्यों न हो जायगा? इस प्रकार चक्षुमें तैजसपना सिद्ध नहीं होता इसी कारण आँख किरण वाली हैं यह भी सिद्ध नहीं होता। यहाँ चक्षुसन्निकर्षवादी इसलिए आँखमें किरणें सिद्ध करना चाहता है कि गोलक आंख तो पदार्थ तक जाती नहीं शरीरमें ही रहती हैं और ये पदार्थ बहुत दूर पड़े हुए हैं। यदि किरणें नहीं मानते तो यह सिद्ध हो बैठेगा कि पदार्थसे इन्द्रियां भिड़े बिना भी जानी जाती हैं। ऐसा वे मानना नहीं चाहते। सारी इन्द्रियां पदार्थोंसे भिड़कर ही ज्ञान किया करती हैं, तो अन्य इन्द्रियमें तो बात घटित कर सकते हैं कि देखो, स्पर्शन इन्द्रिय पदार्थको छूकर उसका स्पर्श जानती है, रसना इन्द्रिय, घ्राण और श्रोत्र इन्द्रिय भी पदार्थको छूकर जानती है. पर रूप भी पदार्थको छूकर जानता है और वे किरणें पदार्थको छूती हैं ऐसा समर्थन किए बिना सिद्ध नहीं हो सकती है।

चक्षुरश्मि और अर्थसम्बन्ध दोनोंकी असिद्धि – सबसे पहिले जो बात बतलायी थी सन्निकर्षवादीने कि चक्षु अपनी किरणोंसे सम्बन्धित अर्थका ही प्रकाश किया करते हैं, तैजस होनेसे। तो इस हेतुसे क्या सिद्ध करना चाहते थे क्या आंखों में किरणें होती हैं यह सिद्ध करना चाहते थे या उन रश्मियोंका ग्राह्य पदार्थोंसे संबंध सिद्ध करना चाहते थे। तो रश्मियाँ तो सिद्ध नहीं कर सके। अब अन्य पदार्थके सम्बन्धकी बात सिद्ध नहीं कर सकते क्योंकि अन्य किस प्रमाणसे पदार्थकी रश्मियां सिद्ध होती हैं? प्रत्यक्षसे तो चक्षुमें रश्मियां प्रतीत नहीं होतीं, अनुमानसे भी उन किरणोंकी सिद्धि नहीं होतीं। ये सब बातें बहुत बहुत बता दी गई हैं। तो जब चक्षुकी किरणें ही सिद्ध नहीं हुईं तब रश्मियाँ स्वरूपसे ही असिद्ध हैं, फिर उनके बारेमें और जो वर्णन आया करते हैं ज्ञानाद्वैतवादी उनमें महत्त्व आदिक धर्म हैं वे सब श्रद्धामात्र गम्य हैं उनसे सिद्धि नहीं हो सकती। और आँखकी जो गोल है वह अर्थके पास जाती नहीं तब फिर यह कैसे सिद्ध होगा कि चक्षु प्राप्त अर्थका प्रकाश करती हैं।

चक्षुःसन्निकर्षकी सिद्धिमें अन्य इन्द्रियोंका दृष्टान्त अयुक्त—भिड़े हुए अर्थसे ज्ञान होता है, ऐसा यदि सिद्ध करनेके लिए यह कहो कि स्पर्शन आदिकमें यह

बात देखी जाती है कि वे पदार्थसे भिड़कर ही ज्ञान किया करती हैं, तो चक्षुमें भी यही बात सिद्ध होगी। तो इस तरह जबरदस्ती करनेका फल यह होगा कि अनवस्था बन जायगी। हम कहेंगे कि हाथ आदिक प्राप्त हुए, वे दूसरे पदार्थका आकर्षण करते हैं। जैसे मनुष्य हाथमें डंडा उठाकर भागे तो हाथसे छुवा तब उसमें आकर्षण हुआ। तो जो अयसकांत मणि है उसमें भी हम यह कह बैठेंगे कि अयसकांत मणि लोहको छूकर आकर्षण करेगी। बाहर लोह रखा रहे और वह मणि उसका आकर्षण कर सके, यह सिद्ध न होगा, क्योंकि यहां हाथमें देखते हैं कि पदार्थको पकड़कर ही आकर्षण होता है। इससे स्पर्शन इन्द्रियका दृष्टान्त देकर चक्षुको प्राप्त अर्थका प्रकाशक सिद्ध नहीं कर सकते। यदि ज्ञानमें प्रमाण बाधा दोगे लोहके सम्बन्धमें, तो यह बात तो इन नेत्रोंमें भी है। यदि स्पर्श भिड़कर जानती है तो जाने, किन्तु आँख भिड़कर नहीं जानती। यों चक्षुका सन्निवर्ष सिद्ध नहीं होता।

योग्यताके कारण चक्षुके निमित्तसे रूपका ज्ञान— चक्षुसन्निकर्षवादी यह मानते हैं कि आँखका पदार्थसे सम्बन्ध होता है तब पदार्थका ज्ञान होता है। इसी समर्थनमें वे स्याद्वादीसे प्रश्न कर रहे हैं कि यदि चक्षुका पदार्थके साथ सम्बन्ध न होता तो फिर चक्षुमें ज्ञान कैसे प्रकट होता? तो उत्तर दिया जा रहा कि कौन कहता है कि आँखमें ज्ञान होता है या पदार्थमें ज्ञान होता है। ज्ञानका उदय तो आत्मामें माना गया है। चक्षु पदार्थसे भिड़ता नहीं है। आँखमेंसे किरणें निकलती हैं न आँखका गोलक पदार्थसे भिडता है। आँख आँखकी जगह है पदार्थ अपनी जगह है। ऐसा ही सम्बन्ध है कि आंखके द्वारा यह आत्मा दूर रहने वाले पदार्थोंको भी जान जाता है। ऐसा भी नहीं कह सकते हो कि यदि आँख भिड़कर न जाने तो फिर एक साथ सभी पदार्थोंको आँख जान लेवे। यह दोष भी नहीं दे सकते क्योंकि प्रत्येक पदार्थमें भावों में उसकी शक्ति प्रतिनियत है। जो जहाँपर योग्य है वह ही उस कामको करता है और फिर कार्यकारणका अधिक भेद माननेपर हम यह प्रश्न कर बैठेंगे कि सब ही काम एक कार्यसे क्यों नहीं हो जाते. और आँखकी किरणें लोकके अन्त तक क्यों नहीं जा पातीं? क्यों दो मीलको ही देखकर रह जातीं। सैकड़ों मीलकी चीज क्यों नहीं देख पातीं? यदि कहो कि आँखोंकी योग्यता ही उतनी है तो सब जगह योग्यता मान लो। आत्मामें जाननेकी योग्यता है इसलिए आत्मा जान लेता है। इसमें इसकी जरूरत न पड़ेगी कि आँखें पदार्थसे भिड़ें तब जानें। पदार्थसे भिड़कर तो आंखें जानती ही नहीं। आँखमें जो अंजन लगा है या आँखमें फूली आदिक निकली है उसे आंख क्या जानती है? आंख तो बिना छुवे अलग ही रहे पदार्थको जाना करती है।

चक्षुःसन्निकर्षमें चक्षु द्वारा रसादिके ज्ञानका प्रसङ्ग— अब इस बातपर भी विचार करिये। तुम मानते हो कि आंख रूपको जानती और किस तरह जानती है कि आंखका तो है पदार्थसे संयोग और पदार्थमें है रूपका समवाय। दो सम्बन्ध

हुए - संयोग सम्बन्ध और समवाय सम्बन्ध। दो पदार्थोंका जो कि न्यारे न्यारे हुए उनका तो संयोग सम्बन्ध होता है और एक ही पदार्थमें जो उसका गुण है उन गुणों का समवाय सम्बन्ध होता है। समवाय कहते हैं तादात्म्यकी तरह और संयोग निकट रहनेको। तो आँखका रूपके साथ संयुक्त समवाय है सीधा सम्बन्ध नहीं है। याने आँखने तो पदार्थसे सम्बन्ध किया और पदार्थसे है रूपका सम्बन्ध, इस तरह आँखसे रूप जाना। तो जब संयुक्त समवायसे आँख रूपको जानती है तो इस तरह आंखका रस और गंधके साथ भी संयुक्त समवाय सम्बन्ध है। आंखने तो पदार्थके साथ संयोग सम्बन्ध किया और पदार्थमें जैसे रूपका समवाय है ऐसे ही रसका भी गंधका भी स्पर्शका भी समवाय सम्बन्ध है। तो आंख रूपको ही क्यों जानती है रस आदिकको क्यों नहीं जान लेती? जैसे आँखका रूपके साथ संयुक्त समवाय सम्बन्ध है इसी तरह आंखका रसके साथ भी संयुक्त समवाय सम्बन्ध है। आंखने जाना आमको। आम देखा और आममें है रूपका सम्बन्ध, आममें है रसका सम्बन्ध तो छूकर जानती है। आंख तो रूपको भी जाने, रसको भी जाने, गंधको भी जाने, और अगर जान लेवे तो एक आंख ही सबको जान जाय। रसनाकी भी क्या जरूरत है और नाक आदि की भी क्या जरूरत है? सभीको जान बैठे। यदि यह कहो कि आंखमें रस और गंधको जाननेकी योग्यता नहीं है, योग्यताका अभाव होनेपर चक्षु उसमें रहनेवाले रसको नहीं जानते तो आचार्य कहते हैं कि फिर तो सभी जगह योग्यता मानो। यह बीचमें सम्बन्ध क्यों निपोड़ रखा है?

चक्षुरश्मिका अर्थसम्बन्ध माननेपर कांचादिकी ओरके पदार्थके ज्ञान में आपत्ति – यदि यह हठ भी किये जावोगे कि आंखसे सम्बन्धित पदार्थ ही आंखके द्वारा जाना जाता है तो यह बतलावो कि कोई स्फटिककी या कांचकी अलमारी है रहने वाली चीजको ये आँख कैसे जान लेती हैं, क्योंकि आंखकी किरणें तो कांचसे रुक जाना चाहिए। क्योंकि तुमने आंख माना है किरणोंको। जैसे आँखकी किरणें भींटके आड़े पड़ जानेपर भींटसे बाहरकी चीज नहीं देख पातीं ऐसे ही कांचके अन्दर अलमारीमें रखी हुई चीज भी न दिखना चाहिए, क्योंकि कांच आड़े पड़ गया। यदि यह कहो कि आंखकी किरणोंकी उस कांचसे टक्कर लगी तो कांच भी नष्ट हो गया इस कारण उस बगलकी चीजको आँख जान लेती है यदि वह नष्ट हो गया तो तो कांचकी उपलब्धि न होना चाहिए क्योंकि किरणोंसे तो कांच स्फटिक नष्ट हो गया। स्फटिक कांच नष्ट हो गया तो उसपर कोई चीज रखी हो तो गिर जाना चाहिए। क्योंकि उसका आधारभूत जो स्फटिक है काँच है वह नष्ट हो गया। परमाणु दृश्य नहीं होते और न किसीके आधारसे होते, अन्यथा अवयवोंकी कल्पना करना अनर्थक हो जायगी। सो परमाणुओंके रहनेकी भी कल्पना नहीं बना सकते। किरणोंने काँच तोड़ दिया और तोड़कर वे किरणें आगे चली गईं, बाहर चली गयीं तब ही पदार्थ देखा जा सकता तो कांचपर रखी चीज गिर जाय अथवा कांच

न दिखे इसपर यह कहो कि कांच नष्ट हो गया था पर दूसरे स्कंध तुरन्त पैदा हो जाते है, तो कहते हैं कि तुरन्त पैदा हो गया दूसरा स्कंध तो किरणमें अड़ जायगा फिर भी आगे नहीं दिख सकेगा, किन्तु दिखती हैं बराबर एक साथ दोनों चीजें। कांच भी दिख रहा और बाहर रखी चीज भी दिख रही। इससे चक्षु पदार्थसे अड़कर नहीं जानता। पदार्थका आँखके निमित्तसे ज्ञान हुआ करता है। चक्षुसन्निकर्ष प्रमाण-भूत नहीं है।

चक्षुरश्मियोंसे कांच टूट जानेपर भी कांचका भ्रम बतानेकी अयुक्तता

नैयायिक लोग यह मानते हैं कि जैसे हाथका और पदार्थका स्पर्श हो तो मालूम होता है कि यह ठंढा है और यह गरम है, जिह्वाका पदार्थसे स्पर्श हो तो रस मालूम होता है, घ्राणका फूलसे स्पर्श हो तो गंध मालूम होता है, स्रोत्रसे शब्दका सम्बन्ध बने तो शब्दका ज्ञान होता है, इसी तरह आँख भी पदार्थसे भिड़ती है तब पदार्थके रूपका ज्ञान होता है। तो भिड़ती कैसे है? तो उनका कहना है कि यह आँखका जो गोला है यह तो पदार्थसे नहीं भिड़ता, पर आँखसे किरणें निकलती रहती हैं। वे किरणें पदाथसे भिड़ती हैं तब पदार्थका ज्ञान होता है कि इसमें अमुक रूप है, इसपर यह आपत्ति दी गयी थी कि यदि ये किरणें पदार्थसे भिड़कर ही जानें तो काँचकी अलमारीमें रखी हुई चीज या स्फटिककी दूसरी तरफ रखी हुई चीजको नहीं जान सकती, क्योंकि किरणें स्फटिकसे टक्कर लगकर रुक जायेंगी। उसे तोड़ कर ये किरणें न जा सकेंगी। फिर उस पदार्थका निर्णय कैसे होगा? शंकाकारने यह कहा कि जब किरणें स्फटिकमें पहुंचती हैं तो वह स्फठिक नष्ट हो जाता है। तो इसपर पूछा गया था कि वह कांच (स्फटिक) अगर नष्ट हो गया तो उसपर रखी हुई कोई चीज गिर जाना चाहिए। और, ऐसा दिखता भी तो नहीं है कि काँच टूट गया। तो शंकाकार इसके उत्तरमें कह रहा है कि वह काँच तो नष्ट हो गया और दूसरा काँच (स्फटिक) उत्पन्न हो गया। फिर दूसरा काँच नष्ट हो गया और तीसरा काँच उत्पन्न हो गया, बस यही उत्पन्न होने और नष्ट होनेका क्रम चलता रहता है। इसी कारणसे लोगोंको यह भ्रम हो गया है कि वहां काँच ज्योंका त्यों है। शंका-कार यह बात रख रहा है अब देखो यद्यपि इसकी प्रत्यक्ष गवाही नहीं देता है कि हाँ ऐसा होता है कि किरणें काँचको नष्ट करती हैं और नया काँच बनता है, फिर भी शंकाकार अपनी युक्ति लगाकर यह बता रहा है कि लोगोंको इसलिये काँचका भ्रम हो गया कि वह जल्दी जल्दी नया-नया बनता रहता है इसपर समाधान देते हैं कि जब काँच नष्ट हुआ और नया बना, फिर नष्ट हुआ नया बना ऐसी स्थितिमें यह तो भ्रम बता दिया कि काँच बराबर है, यह भ्रम हो गया, किन्तु यह भ्रम क्यों नहीं होता कि काँच बिल्कुल नहीं है ऐसा भी तो ज्ञान होना चाहिए। तब वहां दोनों बातें हैं। इसमें यह दलील व्यर्थ है कि आंखसे किरणें निकलती हैं और वे किरणें पदार्थको छूती हैं तब पदार्थका ज्ञान होता है। आंखमें ऐसी योग्यता है कि आंख अपनी ही

जगह है, पदार्थ बाहर है, पर आंखके निमित्तसे वह पदार्थ जान लिया जाता है।

चक्षुरश्मियों के सम्बन्धमें एक और विचार अब और भी सोचिये ! यदि आँखकी किरणें जाकर पदार्थको जानें तो जो मलिन जल है गंदा जल है उसके भीतर पड़े हुए पदार्थोंको ये आँखे क्यों नहीं जान जाती ? क्योंकि जिन आंखकी किरणोंमें इतनी क्षमता है कि स्फटिक और कांचको तोड़कर भीतर चली जाती हैं वे किरणें क्या गंदे जलको पार करके उसके भीतरकी चीजोंको जान नहीं सकतीं ? तो उसके उत्तरमें सन्निकर्षवादी यह कह रहे हैं कि जब आंखकी किरणें उस गंदे पानीके पास पहुँचीं तो पानीने किरणोंका नाश कर दिया इसलिए वे भीतर नहीं जा सकीं और उस गंदे जलके भीतरके पदार्थोंको आंखें न जान सकीं। यदि ऐसा मंतव्य है तो फिर जो साफ जल है उस साफ जलके भीतर पड़ी हुई चीज भी न दिखना चाहिए क्योंकि जब वे किरणें उस जलके निकट पहुँचीं तो जलने उन किरणोंको नष्ट कर दिया। पर, ऐसा तो देखा नहीं जाता। यदि यह कहो कि किरणोंकी योग्यतापर बात है। किरणें कहीं जा सकती हैं ? कहीं नहीं जा सकतीं। तो यह सब उसकी योग्यतापर है तो फिर सब जगह योग्यता मान लो। किरणें आंखोंमें नहीं होतीं, पर आँखोंमें ऐसी योग्यता है कि पदार्थोंके जाननेमें कारण हो जाती हैं। इससे जितने पहले दोष बताये गए हैं उन दोषोंको यदि नहीं चाहता है दार्शनिक तो उसको प्रतीति सिद्धि बातकी अवहेलना न करनी चाहिए। अर्थात् सब लोग प्रत्यक्षसे यह ही समझ रहे हैं कि आँख हमारी पदार्थसे भिन्न है, उसमें न किरणें हैं, और न पदार्थसे भिड़ती है, अलग रहकर ही जानती है। ऐसा ही मानना चाहिए।

चक्षुके अप्राप्यकारित्वकी अनुमानसे सिद्धि– चक्षु प्राप्यकारी नहीं है, ज्ञानमें ऐसी योग्यता है कि वह चक्षु इन्द्रियका निमित्त पाकर एकदेश विशद ज्ञान कर ले। चक्षुका अप्राप्यकारित्व अनुमानसे भी सिद्ध होता है। चक्षु अप्राप्त अर्थका ही प्रकाश किया करते हैं याने चक्षुसे बिना भिड़े हुए ही पदार्थका प्रकाश कर लिया जाता है अर्थात् जान लिया जाता है क्योंकि अत्यन्त भिड़े हुए पदार्थको ये नहीं जानती है। जो आँखसे भिड़ी हुई चीजको आंख न जान सके तो इससे तो यह सिद्ध हुआ कि आँख भिड़कर किसीको नहीं जानती। यदि आँख बाहरी पदार्थसे भिड़कर जाने तो आँखमें यदि काजल लगा दें तो उसे भी आँख जान जाय। उसे क्यों नहीं आँख जान लेती। जानती तो नहीं। इससे यह सिद्ध है कि जाननेके लिए आँख पदार्थसे भिड़ती नहीं है। पदार्थसे अलग ही रहकर आँख जाननेमें कारण बन जाती है। हमारा यह हेतु असिद्ध भी नहीं है क्योंकि दुनिया मान रही है कि आंखमें जो अत्यन्त निकट हैं धुन्ध आदिक रोग उनको आँख नहीं जान सकती। जो अत्यन्त निकट चीजको नहीं जान सकती, वह किसी भी जगह भिड़ी हुई चीजको भी नहीं जानती। बिना भिड़े ही अपनी जगह रहकर आँख पदार्थको जाननेमें निमित्त होती है।

चक्षुके अप्राप्तार्थ प्रकाशकत्वका पुनः समर्थन —अभी यह सिद्ध किया था कि चक्षु बिना भिड़े हुए पदार्थोंका ज्ञान कराती हैं क्योंकि अत्यन्त भिड़े पदार्थका नहीं कराती। आँखमें जो अत्यन्त भिड़े हुए अञ्जन आदिक हैं उनका ज्ञान नहीं कराती, तो उससे सिद्ध है कि बाहरमें रहने वाले पदार्थसे भी भिड़कर ज्ञान नहीं कराती। इसपर चक्षुःसन्निकर्षवादी दोष देते हैं कि तुम्हारा हेतु साध्यसम है अर्थात् जो तुम्हें सिद्ध करना है उसीका तुमने हेतु बना दिया। जैसे कोई कहे कि शब्द अनित्य है, अनित्य होनेसे तो क्या यह कोई दमदार बात हुई ? अनित्य ही सिद्ध करना है और अनित्यको ही हेतु दे रहे तो इसका अर्थ तो एक ही है। न भिड़े हुए पदार्थका प्रकाश करना और अत्यन्त भिड़े हुए पदार्थका प्रकाश न करना दोनोंका तो एक ही अर्थ है। यह हेतु साध्यसम हो गया, क्योंकि जैनोंने प्रसज्य प्रतिषेध माना नहीं। याने भिड़कर प्रकाश नहीं करती, इसका अर्थ न ही न रहे ऐसा माना नहीं जैनोंने। उसका अर्थ यह बना कि बिना भिड़े अर्थका प्रकाश करता है। तो जो साध्यका अर्थ है वही हेतुका अर्थ हो गया। इसपर उत्तर देते हैं कि यह बात सही नहीं है। इसमें तो तुम्हारा ही अनिष्ट सिद्ध होता है। जैसे कान आदिकमें प्राप्यकारित्व है मायने शब्द जब कानोंमें भिड़ते हैं तब ज्ञान होता है और फिर वह अत्यन्त निकट अर्थका भी प्रकाशक है तो इसमें व्याप्यव्यापक भाव सिद्ध है तो जहाँ अत्यन्त प्राप्त अर्थका प्रकाशपना नहीं वहाँ यह सिद्ध कर दिया कि यह भिड़कर नहीं जानता, आँख भिड़कर नहीं जानती क्योंकि यदि आंख भिड़कर पदार्थको जानती होती तो जो अत्यन्त भिड़े हुए अंजन आदिक हैं, उन्हें क्यों नहीं प्रकाश करती। इससे सीधा मान लो कि आंख भिड़कर नहीं जानती, दूर रहकर ही जाननेमें निमित्त होती है।

कांच कामल अञ्जनादिमें चक्षुकी उपदानताका अभाव होनेसे हेतुकी निर्दोष साधकता - शायद यह कहो कि स्पर्शन इन्द्रिय तो भिड़कर जानती है किन्तु स्पर्शन इन्द्रियमें चमड़ेमें जो भीतर चीज है उसे नहीं जानती। तो ऐसे ही हमारी आँख भी बाहरमें भिड़कर जानती है और आँखमें जो चीज है खुद उसको नहीं जानती तो कहते हैं कि यह स्पष्ट युक्त नहीं है क्योंकि स्पर्शन इन्द्रियमें जो भीतर चीज है वह तो स्पर्शन इन्द्रियका उपादान है, बाहरी चीज तो नहीं है। और आँखोंमें जो काँच हुआ, कामल रोग हुआ, मोतिया हुआ, धुन्ध हुआ, काजल लगाया, ये तो आँखकी चीज नहीं हैं, ये तो ऊपरी चीज हैं इसलिए अन्य इन्द्रियका दृष्टान्त देकर यह सिद्ध नहीं कर सकते। जैसे कहते हैं ना कि रसना इन्द्रिय बाहरी चीजका तो स्वाद ले लेती है पर खुदका स्वाद नहीं लेती, ऐसे ही ये आँख बाहरी चीजको तो जान लेती हैं किन्तु खुदकी चीजको नहीं जानतीं। तो यह दृष्टान्त नहीं दे सकते क्योंकि जो रसनाकी निजी चीज है वह तो रसनाका उपादान है, पर जो आँखमें अञ्जन टेंट आदिक हैं वे आँखको उपादान तो नहीं हैं। अपने कारणसे भिन्न जो स्पर्श आदिक हैं वे स्पर्शन इन्द्रियके विषय हैं, खुदका प्रकाश न हो, पर खुदमें जो धुन्ध आदिक हैं वे तो आँखके

कारणसे अलग चीज हैं, उनका क्यों ज्ञान नहीं होता इससे यह बात स्पष्ट सही है कि आँख अत्यन्त भिड़े हुए बाह्य पदार्थको जान नहीं सकती। और फिर अनुमान लगा लो। आँख बाहर जा करके पदार्थसे सम्बन्ध नहीं करती। इन्द्रिय होनेसे। जैसे स्पर्शन आदिक इन्द्रिय। इस अनुमानसे अप्राप्यकारिता सिद्ध होती है। शायद यह कहो कि आँख तो पदार्थमें नहीं जाती मगर पदार्थ आँखमें आ जाता है तो इसमें भी प्रत्यक्ष विरोध है। न तो पदार्थके पास आँख को जाते हुए किसीने देखा है और, न आँखमें पदार्थको घुसते हुए ही किसीने देखा होगा। विषय विषयके स्थानपर है, चक्षु-चक्षुके स्थानपर है।

चक्षु और मनकी अप्राप्यकारिता होनेसे सन्निकर्षमें प्रत्यक्षताकी असिद्धि—चक्षु और मन ये दो भिड़कर नहीं जानते, अन्य इन्द्रिय तो भिड़कर जानती हैं, कानमें शब्द भिड़ें तो जानें, नाकमें गंधके परमाणु घुसें तो जानें, जिह्वापर चीजका सम्बन्ध हो तो जानें, स्पर्शन इन्द्रियसे पदार्थका सम्बन्ध हो तो जानें, किन्तु आँख दूरसे ही जानती है। मान लो हजारों योजनाकी बात दूरसे ही जानता है। अमेरिकामें मन चला गया तो क्या मन भिड़कर चला गया? मन मनकी जगह है। यहाँ रहकर ही मनने बाहरकी बात जान ली। इस तरहसे चक्षुसन्निकर्षको प्रत्यक्ष नहीं सिद्ध कर सकते प्रत्यक्ष केवल दो ही हैं एक मुख्य प्रत्यक्ष और एक सामव्यवहारिक प्रत्यक्ष। जो बात व्यवहारमें लगती है उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं, और अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान, केवलज्ञान, जो एक आत्मासे ही जानता है वह मुख्य प्रत्यक्ष है। और तीसरे ढङ्गका कोई प्रत्यक्ष नहीं है।

प्रत्यक्ष प्रमाणके भेद—न्यायशास्त्रमें प्रमाणका लक्षण बताया है कि ऐसा ज्ञान प्रमाण कहलाता है जो ज्ञान अपनेको भी जाने और पदार्थको भी जाने अर्थात् ज्ञान खुदका भी निर्णय रखता है कि मैं ठीक हूँ और पदार्थका भी निर्णय रखता है। जैसे जिस ज्ञानसे जाना कि यह चौकी है तो उस ज्ञानने दोनों जगह निर्णय बनाया। चौकीका जो यह ज्ञान है सो यह ज्ञान सही है, जो ज्ञानमें चौकी आ रही है, तो यह पदार्थ भी चौकी ही है। ऐसे ज्ञानको प्रमाण कहकर दूसरे परिच्छेदमें यह बता रहे हैं कि ज्ञान प्रत्यक्ष और परोक्षके भेदसे दो तरहका होता है—कोई प्रमाण प्रत्यक्ष है कोई प्रमाण परोक्ष है। प्रत्यक्ष उसे कहते हैं जो स्पष्ट ज्ञात हो। उस प्रत्यक्षके भी दो भेद बताये जा रहे हैं—एक सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और दूसरा मुख्य प्रत्यक्ष। सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष तो हम आप लोगोंका व्यवहार वाला प्रत्यक्ष है। जैसे इन्द्रियसे देखकर कहते हैं कि हमने प्रत्यक्ष देखा स्पष्ट सुना, तो यह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। और, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान, केवलज्ञान ये मुख्य प्रत्यक्ष हैं। तो उन दो प्रकारके प्रत्यक्षों मेंसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्षका स्वरूप बतला रहे हैं और किन कारणोंसे उत्पन्न होता है यह भी बता रहे हैं।

इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं देशतः सांव्यवहारिकम् [२–५]

सांव्यवहारिक प्रत्यक्षका स्वरूप – जो इन्द्रिय और मनके निमित्तसे उत्पन्न हो और एकदेश स्पष्ट हो उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं। जैसे स्पर्शनसे जानना कि अमुक स्पर्श है यह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है, रसनासे चखकर जानना कि यह अमुक रस है वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। इसी प्रकार घ्राणसे, चक्षुसे, श्रोत्रसे जो जाना जाता है साक्षात् वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है, इसी प्रकार मनसे जो भी जाना गया वह भी प्रत्यक्ष है। इन सब प्रत्यक्षोंमें एक देश स्पष्टता है। जैसे आंखोंसे देखा कि यह चौकी है तो उसमें सन्देह तो नहीं रहता। स्पष्टता है, लेकिन यह स्पष्टता एक देश है, सर्वदेश नहीं है। चौकीको जाना तो एक हिस्सा ही जाननेमें आया और उसमें ऊपरी चीज रूप मात्र आंखोंसे जाननेमें आया तो एक देश जो स्पष्ट हुआ वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है।

सांव्यवहारिक प्रत्यक्षका लक्षण बताने वाले सूत्रका पदविन्यासपूर्वक अर्थ —इस सूत्रमें तीन पद हैं –'इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्त,, देशतः, सांव्यवहारिकम्।' तो इसमें पहले सूत्रोंसे 'विशदं प्रत्यक्षं' यह अनुवृत्ति करते हैं। तब सूत्र इस तरह पूरा हुआ इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्त देशतः विशद [ज्ञान] सांव्यवहारिकं प्रत्यक्षम्। सांव्यवहारिक शब्दका अर्थ है –संव्यवहार। सम् मायने समीचीन. जिसमें कोई बाधा न आये, निर्दोष बाधारहित, व्यवहारका अर्थ है –प्रवृत्ति और निवृत्ति, अवाधित प्रवृत्ति और निवृत्ति, लगना और हटना इसका नाम है संव्यवहार। बाधारहित, कहीं लगना, कहींसे हटना। जैसे हमने सामने देखा कि यह सांप है तो हट गए, तो इस ज्ञानके फलमें क्या हुआ ? हटना। सामने देखा भोजन है तो लग गए। तो इस ज्ञानका फल हुआ लगनेका। यह संव्यवहार जिसका प्रयोजन हो उस प्रत्यक्षका नाम है सांव्यवहारिक।

सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और अनुमानकी बोधपद्धतिका अन्तर यहां शङ्काकार यह कहता है कि निर्वाध रूपसे हटने और लगनेकी बात तो अनुमानसे भी हो जाती है तो उसे भी सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहना पड़ेगा। इस शङ्का पर उत्तर देते हैं कि नहीं, जो इन्द्रिय और मनके निमित्तसे पैदा हो और एकदेश स्पष्ट हो उसको कहते हैं प्रत्यक्ष ! चाहे अनुमान ज्ञानसे भी प्रवृत्ति और निवृत्तिका काम बना है वह तो ज्ञानकी बात है कि जिससे हटना चाहिए उससे हटा दे और जिसमें लगना चाहिए उसमें लगा दे। ये तो सब ज्ञानमात्रके काम हैं अथवा उपेक्षा करदे। उन ज्ञानोंमेंसे जो इन्द्रिय और मनके निमित्तसे साक्षात् हुआ, वह है सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष अनुमानसे बनता है। जैसे किसी पर्वतमें धुवाँ देखकर अग्निका अनुमान किया कि इसमें अग्नि होनी चाहिए धुवां होनेसे। तो यह जो धुवाँ दीखा है वह तो है सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष क्योंकि आँखसे सीधा जान लिया गया, पर जाने गये धुवाँसे जो अग्निका ज्ञान किया

जा रहा इस कारण अनुमान ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं हो सकता और साथ ही जैसे धुवां एक देश स्पष्ट हो रहा है इस प्रकार अग्नि ज्ञानमें स्पष्ट नहीं होरही है। अगर ज्ञानमें अग्नि स्पष्ट होती तो फिर ये कल्पनायें क्यों उठती हैं उस अनुमित अग्निपर काहेकी अग्नि है ? पत्तोंकी है कि लकड़ीकी है कि कोयलेकी है या कोयलेके पत्थरकी है ? यह संदेह न होता। तो अनुमान ज्ञानमें स्पष्टता नहीं है, सांव्यवहारिक प्रत्यक्षमें स्पष्टता है। इस प्रकार यह लक्षण निर्दोष हुआ कि जो इन्द्रिय और मनके निमित्तसे उत्पन्न हुआ वह ज्ञान प्रत्यक्ष है।

द्रव्येन्द्रियका लक्षण— अब इन्द्रियकी व्याख्या करते हैं। इन्द्रियां दो प्रकार की होती हैं द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय। द्रव्येन्द्रिय तो पुद्गलात्मक है। जैसे गोलक है, आँखमें नाकमें भी जो गोल पिण्ड है, रसनामें भी है सबमें पुद्गलात्मक रचनाएँ हैं तो गोलक आदिक परिणाम विशेषरूपमें परिणत हुआ जो रूप रस गध स्पर्श वाला है पदार्थ वह द्रव्येन्द्रिय है। सभी द्रव्येन्द्रिय पुद्गलात्मक होती हैं। पुद्गल कहनेमें सब आ गया। पृथ्वी जल, अग्नि आदिक जो कुछ ऊपरी चीजें हैं वे सब पुद्गलमें आगयीं क्योंकि वे सब रूप रस गंध स्पर्शात्मक हैं। कोई लोग ऐसा मानते हैं कि स्पर्शनेन्द्रिय तो वायुका गुण है, रसनेन्द्रिय जलका गुण है, घ्राण इन्द्रिय पृथ्वीका है और आंखें तैजससे बनी हैं और ये कान आकाशसे बने हैं। इस प्रकार पांचों इन्द्रियोंको पांच तत्वोंसे उत्पन्न माना है। सो वे पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये चार कोई पुद्गलसे भिन्न जातिकी चीज नहीं हैं, ये कोई अन्य द्रव्य नहीं हैं पुद्गलमें ही अन्तर्गत हैं। श्रोत्र द्रव्येन्द्रिय भी आकाशात्मक नहीं, पौद्गलिक हैं ये सब तो हुई द्रव्येन्द्रिय।

भावेन्द्रियका स्वरूप अब भावेन्द्रिकका वर्णन सुनिये ! भावेन्द्रिय दो प्रकारकी हैं लब्धिरूप और उपयोग रूप। लब्धि नाम है क्षयोपशमविशेषका। ज्ञानावरणमें क्षयोपशमसे जो रूप आदिक पदार्थोंके ग्रहणकी शक्ति उत्पन्न हुई है उसका नाम है लब्धि। पदार्थोंके जाननेकी योग्यताका नाम हैलब्धि और उस पदार्थमें लग जानेका नाम है उपयोग। यदि लब्धि न हो तो पदार्थ मौजूद भी है किंतु उसका ज्ञान नहीं हो सकता जैसे यहाँ कोई बालक अक्षर तक भी नहीं पढ़ सकता, तो और जो कुछ ग्रन्थ लिखे हैं उन्हें वह क्या जाने ? उसके लब्धिकी कमी है। उपयोगरूप आदिकको जाननेमें जो व्यापार होता है उसका नाम है उपयोग। यदि उपयोग पदार्थोंके ग्रहणमें न लगे, किसी अन्य विषयोंमें लगा हुआ हो तो पास भी रखा हुआ कोई पदार्थ हो उसका भी ग्रहण नहीं होता। इससे सिद्ध है कि उपयोग लग रहा हो तो पदार्थोंका ज्ञान होता है, तो भावेन्द्रियमें लब्धि और उपयोग दोनों आये।

द्रव्येन्द्रियकी विशेषताएँ और मनके भेद— द्रव्येन्द्रियमें निर्वृत्ति और उपकरण दो बातें होती है। निर्वृत्ति नाम है रचनाका और उपकरण नाम है उस रचनाकी रक्षाके लिए अन्य जो रचना बनी है उसका। जैसे आंखमें निर्वृत्ति तो है

वह मसूरके दाने बराबर चक्षु इन्द्रियकी रचना और उपकरण है ऊपर जो पलक आदि हैं, जिनसे आँखकी रक्षा होती है वह। इसमें भी निवृत्तिके दो भेद हैं–अन्तरङ्ग निवृत्ति और बहिरङ्ग निवृत्ति। तो यह तो बहिरङ्ग निवृत्ति है जो अभी बताया है और अन्तरङ्ग निवृत्ति क्या है? कि उस मसूरके दानेके आकारमें जो आत्मप्रदेश रचना फैल गई है वह। जो पलक आदिक बताये वे तो हैं बाह्य उपकरण। और, आँखोंमें मसूरके दानेके चारों ओर सिमटकर बना हुआ जो शुक्ल कृष्ण गटा है वह आभ्यंतर उपकरण है। उपकरणोंसे इन्द्रियसे इन्द्रियकी रक्षा होती है। तो ऐसी ये इन्द्रियाँ हैं, इसी प्रकार मनकी भी बात समझना। मन भी दो प्रकारका है द्रव्यमन और भावमन। जो हृदयमें ८ पाँखुड़ीके कमलाकार सूक्ष्म पिण्ड है, शरीर रचनाका अङ्ग है वह द्रव्यमन है और जो जाननकी शक्ति है और उपयोग लगाना है वह भावमन है।

इन्द्रियोंकी पौद्गलात्मकताका मण्डन–इन्द्रिय और मनके निमित्तसे उत्पन्न हुआ वह ज्ञान जो एकदेश स्पष्ट है वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहलाता है। इस कथनसे इसका भी निराकरण हो जाता कि जो लोग मानते हैं कि पृथ्वीसे तो नाक बनी, जलसे रसना इन्द्रिय बनी, अग्निसे चक्षु इन्द्रिय बनी और वायुसे स्पर्शन इन्द्रिय बनी। यह बात यों अयुक्त है कि पृथ्वी आदिक ये चारों चीजें कोई अलग-अलग द्रव्य नहीं हैं, सब पुद्गलात्मक हैं। अलग द्रव्य तो उसे कहते हैं जो एक दूसरी जातिके द्रव्यरूप कभी भी न हो सके। जैसे जीव कभी पुद्गलरूप नहीं हो सकता इसलिए जीव अलग द्रव्य है, पुद्गल अलग द्रव्य है। किन्तु पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये चार चीजें ऐसी नहीं हैं कि पृथ्वीके जो स्कंध हैं, परमाणु हैं वे पृथ्वीरूप ही रहें, जलादि रूप न बनें। जल आदिकके परमाणु पृथ्वी आदिक रूप न बनें ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि चन्द्रकान्त मणिसे जलकी उत्पत्ति होती है। और, इसी प्रकार जवा जो खा लिये जाते हैं उनसे हवा भी बनती है, तो उससे वायु बन गयी। बांसोंमें आग पैदा हो गई, तो यह नियम नहीं रहा कि पृथ्वी, जल अग्नि, वायु ये एक किसी दूसरे रूप न बन सकें इस कारण ये अलग तत्व नहीं हैं, सब पौद्गलात्मक हैं।

इन्द्रियोंकी पौद्गलिकता ज्ञान दो प्रकारके बताये गए हैं एक प्रत्यक्ष ज्ञान और दूसरा परोक्ष ज्ञान। प्रत्यक्ष उसे कहते हैं जो स्पष्ट ज्ञान हो। प्रत्यक्ष भी दो तरहके हैं एक सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और एक मुख्य प्रत्यक्ष। जो एकदेश स्पष्ट ज्ञान करे वह है सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष। यह इन्द्रिय और मनके कारणसे होता है। और, जो अपने विषयको पूर्णरूपसे स्पष्ट जाने वह मुख्य प्रत्यक्ष है। जिसे अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान कहा है। तो इन्द्रिय क्या चीज है इस विषयमें चर्चा चल रही है। इन्द्रियाँ सब पौद्गलिक हैं जिनमें रूप, रस, गंध, स्पर्श ये चारों गुण होते हैं, जहाँ इनमेंसे कोई भी एक गुण हो वहाँ चारों ही होते हैं और उसे पुद्गल कहते हैं।

तो जितनी भी इन्द्रियाँ हैं—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये सभी पौद्गलिक हैं, मन भी पौद्गलिक है।

घ्राणेन्द्रियकी पार्थिवताकी असिद्धि— कोई लोग ऐसा मानते हैं कि चार महाभूतोंसे यह शरीर बना है, पंच तत्वोंसे यह शरीर बना है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। कुछ लोग ऐसा मानते हैं। तो पृथ्वी तत्त्वसे तो नाक बनी, जल तत्त्वसे जीभ बनी, अग्नि तत्त्वसे आँख बनी, वायु तत्त्वसे ये सारी स्पर्शन इन्द्रिय बनी और आकाश तत्त्वसे कान बने। इसमें यह अनुमान बना रहे हैं कि घ्राण पार्थिव है, नाक पृथ्वी तत्त्वसे बनी है क्योंकि किसी भी पदार्थमें रूप, रस, गध. स्पर्श सब कुछ मौजूद होकर भी नाक गंधको प्रकट करती है। भौतिकवादमें गंध गुण माना है पृथ्वी में, जलमें रस माना है, अग्निमें रूप माना है, वायुमें स्पर्श माना है और ऐसा मानने का कारण यह है कि जो उन्हें विशेष प्रकट दीखा उस ही को मान लिया, किन्तु कोई पदार्थ ऐसा नहीं है कि जिसमें केवल रूप हो या रस हो या गंध हो या स्पर्श हो। कोई चीज अधिक व्यक्त है कोई नहीं व्यक्त है। तो अनुमान दे रहे हैं भौतिकवादी कि घ्राण पार्थिव है, क्योंकि घ्राण इन्द्रिय रूप आदिकमें केवल गंधको ही जानता है। समाधानमें आचार्यदेव कहते हैं कि सूर्यकी किरणें जब तेज होती हैं तो उन किरणोंमें उस धूपमें कोई तेल लगाये हुए मनुष्य खड़ा हो तो उस धूपके कारण उस प्रकारकी गंधकी प्रतीति होती है अथवा जमीनपर जल सींच दिया जाय तो उसमें भी गंध मालूम देती है। खेतकी सूखी डाली हो, फिर उसपर डाल दिया जाय पानी तो उसमें गंधकी अभिव्यक्ति होती है, तो फिर जब वह पानीका सींच भी गंधका अभिव्यंजक हो गया तो फिर पानीसे याने जल तत्त्वसे मान लो घ्राण। यह युक्ति ठीक नहीं है कि जो केवल गंधको जाने वह पार्थिव तत्त्व है।

पृथ्वी आदि चारों कायोंकी पुद्गल जाति— भैया! ये तो इन्द्रियकी विशेषतायें हैं कि यह आत्मा घ्राण इन्द्रियके द्वारा गंधको जानता है, स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा स्पर्शको जानता है आदि, ये भिन्न-भिन्न योग्यतायें हैं, उनमें यह निर्णय नहीं है कि नाक पृथ्वी से बनी, रसना जलसे बनी, आँख अग्निसे बनी, स्पर्शन वायुसे बनी ये सभीके सभी पौद्गलिक हैं, प्रथम तो ये चारों तत्त्व अलग-अलग नहीं हैं, पृथ्वी अलग हो, जल अलग हो, वायु अलग हो, अग्नि आदिक अलग हो उस समय तो हैं अलग, पर इनका उपादान है, वे सब पौद्गलिक हैं। ये अलग-अलग तब कहे जायें जब पृथ्वी तीन कालमें भी जल अग्नि आदिक न बन सके तो कहें कि हां यह पृथ्वी तत्त्व अलग है। आग तीन कालमें भी पृथ्वी आदिक न बन सके, जल कभी पृथ्वी, आग, हवा न बन सके, हवा इन तीनों रूप कभी न बन सके तो समझिये कि ये चारों चीजें न्यारी न्यारी हैं, लेकिन ये बन जाते हैं एक दूसरे रूप। जैसे जौ होता है एक अनाज, जिसको खा लेनेपर पेटमें वायु पैदा होती है। लो देखो! हवा उस पार्थिव तत्त्वसे

बनी। चन्द्रकान्त मणिसे जल टपकने लगता है, और चन्द्रकान्त मणि है पार्थिव तो देखो पृथ्वीसे जल उत्पन्न हुआ। पृथ्वीसे हवा बन गयी। पृथ्वी तत्त्व ही माना उन लोगोंने बाँस, बनस्पति नहीं माना। बाँसकी रगड़से आग पैदा हो गई तो पृथ्वीने आग रूपको धारण कर लिया। यों ये सभी एक दूसरे रूप परिणाम जाते हैं। एक चीज दूसरी चीजमें मिल जानेपर भी अनेक रूप धारण कर लेती हैं। ठीक है, वे कुछ भी रूप धर लें पर वे सदा पुद्गल ही रहेंगे। इस कारण ये सब एक पुद्गल जातिमें हैं। भिन्न-भिन्न ये चारों जातियां नहीं हैं।

रसनेन्द्रियादिककी पौद्गलिकता-- किसी मनुष्यने तेल लगाया शरीरमें तो शरीर तो पृथ्वी तत्व है क्योंकि स्पर्शन इन्द्रिय है। अथवा शङ्काकारके सिद्धान्तसे जब धूप पड़ती है तो शरीरमें गंध प्रकट हो जाती है। तो सूर्यकी किरणें हैं अग्नि तत्व और वहाँ गंध प्रकट हो गया तो यह अलग अलग नियम नहीं है कि यह पृथ्वी तत्व है, यह जलतत्व है। ये सब पोद्गलिक हैं। भौतिकवादियोंने एक अनुमान बनाया है कि रसना इन्द्रिय जल तत्वसे बनी है क्योंकि रसना इन्द्रिय रूप आदिकमेंसे केवल रूपको जानती है यह भी बात ठीक नहीं है क्योंकि जैसे नमक है तो नमक जल तत्व नहीं माना गया, वह पार्थिव है। नमकके पहाड़ होते हैं, तो पृथ्वी तत्व होकर भी नमकका रस निकलता है या नमकका रस भी बन जाता है एकदम। तो रसका अभिव्यञ्जक नमक भी हो गया लेकिन उसको तुमने जलतत्वसे निर्णीत नहीं माना। एक हेतु देते हैं वे कि चक्षु तैजस हैं, अग्नि तत्वसे बने हुए हैं क्योंकि रूप आदिकका चक्षुसे ही ग्रहण करते हैं। तो यह भी हेतु सदोष है। जैसे हीरा माणिक्य आदि चमकदार चीजें हैं जिनसे कमरेमें भी प्रकाश हो सके तो माणिक्य तो तैजस नहीं है, वह तो पृथ्वीकी चीज है और रूपका प्रकाश करती है। एक अनुमान वे कहते हैं कि स्पर्शन इन्द्रिय वायुसे बनी क्योंकि रूप आदिकमेंसे स्पर्शन इन्द्रिय केवल स्पर्शको प्रकट करती है, यह भी हेतु सदोष है क्योंकि जैसे कपूर है, उससे भी शीत स्पर्शकी व्यञ्जकता बन जाती है। पानीमें कपूर डाल दिया तो वह शीत उत्पन्न कर देता है मगर कपूर जलतत्व नही है इसलिए यह हेतु सदोष है। अतः यह मानना चाहिए कि ये सब चीजें पौद्गलिक हैं, उनसे यह शरीर बना है, शरीरके अङ्ग बने हैं।

इन्द्रिय द्वारा ज्ञाताका ज्ञान— इन इन्द्रियोंके निमित्तसे आत्मा जानता है। द्रव्येन्द्रित अब भी अचेतन है पर यह आत्मा इन्द्रियका निमित्त पाकर प्रत्यक्ष ज्ञान कर रहा है। जैसे किसी कमरेमें ५-६ खिड़की हैं तो कमरेमें रहने वाला व्यक्ति उन खिड़कियोंके माध्यमसे पदार्थोंको जानता है तो, खिड़कियां नहीं जान रहीं। जान तो रहा है वह पुरुष जो कि कमरेके अन्दर है। इसी प्रकारसे यह शरीर एक कमरा है, इसकी ये इन्द्रियाँ खिड़कियोंकी तरह हैं, सो ये खिड़कियाँ नहीं जानतीं, जानने वाला आत्मा है। वह इन इन्द्रिय खिड़कियोंके माध्यमसे जान रहा है। ये इन्द्रियाँ स्वयं नहीं

जानतीं। कभी उपयोग बदला हुआ हो और आँखें खुली हों तो सामने गई हुई चीज का भी ज्ञान नहीं होता। उपयोग दूसरी ओर है। यदि इन्द्रियाँ जानती होतीं तो ये सदा सतर्क रहतीं और सामने आई हुई चीजको जान लेतीं। तो ये इन्द्रियाँ अजीव तत्व हैं। इनके निमित्तसे आत्मा ज्ञान उत्पन्न करता है। इसी प्रकार कर्णको जो बताते हैं कि ये आकाश तत्वसे बने हैं, तो आकाश अमूर्तिक चीज है, आकाश तत्वसे यदि कुछ चीज बन भी सके तो अमूर्त ही बनेगी, मूर्त नहीं बन सकती। कर्ण मूर्तिक हैं आकाशका यहां न कोई गुण है न आकाशकी कोई परिणति है। जैसे ये सब इन्द्रियाँ पौद्गलिक हैं वैसे ही कर्ण इन्द्रिय भी पौद्गलिक है। हम आपका दो इन्द्रिय आदि जीवका यह जो शरीर बना है, इसे त्रस काय कहते हैं, और जो एकेन्द्रिय जीव हैं उनके शरीरको पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय कहते हैं। तो यह हम आप लोगोंका शरीर पौद्गलिक है। इसमें जो इन्द्रियोंकी रचना है वह भी पौद्गलिक है, उनका निमित्त पाकर जो एकदेश स्पष्ट ज्ञान होता है उस ज्ञानको प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं।

ज्ञानकी स्वपरव्यवसायिकताका प्रसङ्ग— इसमें ज्ञानके स्वरूपकी चर्चा है पूरे ग्रन्थमें। ज्ञानका स्वरूप है — जो खुदको और परपदार्थोंको प्रकट करे उसे ज्ञान कहते हैं। जब जब भी ज्ञान होता है तो इसमें दोनों निर्णय एक साथ होते हैं। मेरा ज्ञान ठीक है और यह पदार्थ यही है। उसके जाननेमें फिर कोई सन्देह नहीं रहता। यदि ऐसा सन्देह है कि हमारा यह ज्ञान सही है या नहीं तो वह ज्ञान नहीं। ज्ञानमें तो यह कला है कि वह अपने और ज्ञेय पदार्थोंका निर्णय रखता है। वे ज्ञान किस किस ढङ्गमें रहा करते हैं, उनका क्या भेद है ? क्या प्रकार है ? उनका यह वर्णन चल रहा है। सांव्यवहारिक प्रत्यक्षका यह प्रकरण चल रहा है। सांव्यवहाहिक प्रत्यक्ष वास्तवमें तो परोक्ष है। जो पराधीन ज्ञान हो, जो परकी अपेक्षा करके उत्पन्न हो वह ज्ञान परोक्ष ज्ञान है। इन्द्रियकी अपेक्षासे प्रकाश आदिककी अपेक्षासे हमने जान पाया तो हमारे ये सब ज्ञान परोक्ष ज्ञान हैं। लेकिन व्यवहारमें ये प्रत्यक्ष माने जाते हैं। जो हमने कानोंसे सुना उसे हम दृढ़तासे कहते हैं कि हमने कानोंसे खुद सुना हमने प्रत्यक्ष किया। और, आंखोंसे देखी बातमें तो और भी दृढ़ता लाते हैं कि हमने स्वयं अपनी आंखोंसे देखा। लेकिन सुनी हुई बात भी गलत हो सकती है और कदाचित् देखी हुई बात भी गलत हो सकती है, हाँ वहाँ जो प्रथम ऐन्द्रिय प्रतिभास है वह तो यथार्थ है।

अनुभूतिकी प्रामाणिकता— एक राजा था, उसकी सेज एक नौकर सजाता था, बहुत दिनोंके बादमें एक दिन नौकरने सोचा कि इस सेजपर दो मिनट लेटकर तो देखें—कितना आराम मिलता है। सो वह लेट गया चादर ओढ़कर। दो मिनटमें ही उसे निद्रा आ गई, सो गया। बादमें रानी आयी। उसने समझा कि राजा सो रहे हैं

भो वह भी उसी सेजपर सो गई। बादमें राजा आया तो उस दृश्यको देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ, पर विवेकसे काम लिया। सोचा कि मालूम तो करें कि मामला क्या है। तो नौकरको पहिले जगाया, नौकर जगते ही घबड़ा गया, और बताया कि मैंने दो मिनट इस सेजपर लेटकर देखना चाहा था कि इसपर कितना आराम मिलता है। सो लेटते ही नींद आ गयी। रानीको जगाया तो उसने भी बताया कि मैंने तो यही समझा था कि राजाजी सो रहे हैं सो मैं भी आकर सो गई। तो आँखों देखी हुई बात भी झूठ निकली, अनुभवमें उतरी हुई बात सच निकली। दो स्त्री थीं एक पुरुषके। तो उन दोनोंमेंसे एकके पुत्र न था। दोनों ही उस एक पुत्रपर लड़ गई कि यह मेरा पुत्र है। इसका न्याय राजाके पास गया तो एक स्त्री कहे कि यह हमारा लड़का है और दूसरी स्त्री कहे कि यह हमारा लड़का है। तो राजाने कहा अच्छा इसका न्याय कल होगा। दूसरे दिन जब न्यायका समय आया तो राजाने सिपाहियों को बुलाकर कहा कि देखो ! यह लड़का इन दोनों स्त्रियोंका है क्योंकि पतिकी सम्पत्ति पर इन दोनों स्त्रियोंका बराबर अधिकार है। सो इस लड़केके खण्ड बराबर-बराबर कर दो एक खण्ड इस स्त्रीको दे दो और एक खण्ड इस दूसरी स्त्रीको दे दो। सो जिस स्त्रीका वह लड़का न था वह बड़ी ही खुश हुई। जब सिपाहीने उस लड़केके खण्ड करनेके लिए तलवार उठायी तो जिस स्त्रीका वह लड़का था वह स्त्री कहने लगी, महाराज ! इस लड़केको न काटो, यह लड़का हमारा नहीं है, इसे ही दे दो। राजा ने सारी बात समझली कि वास्तवमें यह लड़का इसी स्त्रीका है जो काटनेके लिए मना कर रही है। तो इन इन्द्रियोंके निमित्तसे जो ज्ञान होता है वह यद्यपि एक देश स्पष्ट है मगर उसमें भी हम स्पष्टताकी कोई पूरी गारन्टी नहीं रखते कि यह बात ऐसी ही है, एक देश है, जो जितने अंशोंमें है। यह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है जो इन्द्रियोंके द्वारा सीधा जान लेता है।

ज्ञानको अर्थालोकजन्य माननेपर शङ्काकारका झुकाव—सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष इन्द्रिय और मनके निमित्तसे उत्पन्न होता है। इस सिद्धान्तपर एक शङ्काकार कहता है कि ज्ञान इन्द्रिय और मनके निमित्तसे होता सो तो ठीक है, पर आत्मा, पदार्थ, प्रकाश सन्निकर्ष आदिकके कारणसे भी तो ज्ञान होता है। आत्मा न हो, प्रकाश न हो, पदार्थ न हो, सन्निकर्ष न हो, तो ज्ञान नहीं होता। इस कारण इनको भी ज्ञानका कारण बताना चाहिए। जैसे प्रत्यक्षज्ञान होनेमें या अन्य ज्ञान होनेमें इन्द्रिय और मन कारण हैं इसी प्रकार आत्मा पदार्थ और प्रकाश सन्निकर्ष आदिक भी कारण पड़ते हैं ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि यह बात युक्त नहीं है, क्योंकि आत्मा सांव्यवहारिक प्रत्यक्षमें कारण रूप तब माना जाय, जब कि अन्य ज्ञानोंमें आत्मा न रहे। यहाँ आत्मा कारण हो तो वह तो अन्य ज्ञानमें भी है, जैसे प्रत्यक्षज्ञानमें आत्मा कारण बतला रहे हो, तो वह परोक्षज्ञानमें भी आत्मा कारण है तो कारण तो वह बताया जाता कि जो अन्यका कारण न हो और इसका हो आत्मा तो सामान्य

चीज है इस कारणसे उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्षके कारणोंमें नहीं गिना । जो एक देश स्पष्ट ज्ञान होता है उस ज्ञानका कारण इन्द्रिय है और मन है । हम इन्द्रियका व्यापार करते हैं, छूते हैं, चखते हैं, रसनासे स्वाद लेते हैं, घ्राणसे गंध लेते हैं, चक्षुसे देखते हैं, कानोंसे सुनते हैं, मनसे सोचते है तो स्पष्ट ज्ञान जो हुआ है उसका कारण ये इन्द्रिय और मन हैं । आत्मा भी खास कारण तो नहीं है पर यहाँ ये मान रहे, और प्रत्यक्ष ज्ञानको छोड़कर अन्य ज्ञानोंमें आत्मा न रहे तब तो कारण कहना चाहिए । सो वह परोक्षज्ञानमें भी रहता है, इसी प्रकार सन्निकर्ष अर्थात् इन्द्रिय और पदार्थका सम्बन्ध हो तब ज्ञान प्रत्यक्ष होता है, इसका अभी खण्डन किया ही गया है । अब रहे शेष पदार्थ और प्रकाश । तो पदार्थ और प्रकाश यद्यपि शङ्काकारको कुछ असाधारण कारण तो जचते हैं. परन्तु ये ज्ञानके कारणरूपसे सिद्ध नहीं होते । किस प्रकार ? तो उसे आचार्यदेव सूत्रमें कहकर स्पष्ट करते हैं ।

नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवत् ॥ २–५ ॥

पदार्थ और प्रकाशमें ज्ञानहेतुत्वका निराकरण— पदार्थ और प्रकाश ज्ञानके कारण नहीं है क्योंकि ये ज्ञेय हैं । जैसे अंधकार । अंधकार ज्ञेय है । जाननेमें आता है, तो अंधकारको ज्ञानका कारण तो नहीं माना । इसी प्रकार प्रकाश भी ज्ञेय है अत: ज्ञानका कारण नहीं है । इसी प्रकार ये सब पदार्थ भी ज्ञेय हैं, जाननेमें आते हैं, ज्ञानके विषय हैं, अतः ज्ञानके कारण नहीं हैं । जैसे आंख खोलकर देखा कि यह भींट है, तो इस ज्ञानके होनेका कारण आँखको कह सकते पर भींटको नहीं कह सकते, क्योंकि भींट तो ज्ञेय है, ज्ञानका कारण नहीं है । दृष्टान्तमें बताया है जैसे अंधकार । तो अंधकार ज्ञेय है, लोग जान लेते हैं देखकर कि यहाँ अंधेरा है । अंधकार ज्ञानका बंधक होनेसे ज्ञानका कारण नहीं, प्रतिछेद्य है, जाननेमें आता है । तो इसी प्रकार ये पदार्थ और आलोक भी चूंकि जाननेमें आते हैं अतः ये कारण नहीं हैं ।

ज्ञानकी अर्थालोककार्यताके निराकरणमें अन्धकारके दृष्टान्तकी सुयुक्तता—अब शङ्काकार कहता है कि अंधकार कोई चीज ही नहीं है । ज्ञान उत्पन्न न हो बस इसीका नाम लोगोंने अंधकार रख दिया । ज्ञान उत्पन्न न हो इसके अलावा और कुछ अंधकार नामक वस्तु ही नहीं है, फिर दृष्टान्त किसलिए देते हो ? अभी सिद्धान्तमें दृष्टान्तरूपसे बात रखी थी कि अंधकार ज्ञेय तो है पर यह ज्ञानका कारण नहीं है, इसी प्रकार यह प्रकाश भी ज्ञेय तो है पर ज्ञानके कारण नहीं है । इसपर शङ्काकार कहता है कि दृष्टान्त किसका देते हो ? अंधकारका कारण पदार्थ हो तब ना ! अंधकार तो इसीका नाम है कि कुछ ज्ञान न हो, सो कह दिया कि अंधकार है । आचार्यदेव इस आशङ्काका समाधान करते हैं कि अंधकार भी प्रकाशकी तरह वास्तविक कोई पदार्थ है, यह बात आगे भी बतावेंगे, और प्रकरणमें इतना ही समझलो कि प्रकाश क्या चीज है ? जिस वस्तुपर प्रकाश है, उस वस्तुका प्रकाशरूप

परिणमन है । इसी प्रकार अंधकार क्या है कि जिस वस्तुपर अंधकार है उस वस्तुका अंधकाररूप परिणमन है और ये पुद्गलके परिणमन कहलाते हैं । कभी पदार्थ प्रकाशरूप है, कभी पदार्थ अंधकाररूप है । यदि ऐसी ही जबरदस्ती करो कि प्रकाश तो कुछ चीज है अंधेरा कोई चीज नहीं, प्रकाश न हो उसीका नाम अंधेरा है, तो कोई यह कहे कि अंधेरा तो चीज है प्रकाश कुछ नहीं ! अंधेरा न रहा उसीका नाम प्रकाश है । इससे सीधी और स्पष्ट बात मान लेनेमें आनाकानी नहीं करनी चाहिए । जैसे प्रकाश वास्तविक पर्याय है इसी प्रकार अंधकार भी वस्तुगत पर्याय है ।

ज्ञेयता और ज्ञानकरणताका पार्थक्य—अब शङ्काकार कहता है कि ये पदार्थ और प्रकाश ज्ञेय हैं तो रहे जावो ज्ञेय, पर कोई चीज ज्ञेय भी रह जाय और ज्ञानका कारण भी रह जाय तो इसमें विरोध क्या आता है ? तुम ज्ञेय होनेके कारण कहते हो कि वह ज्ञानका कारण नहीं है । हम कहते कि ज्ञेय भी है और ज्ञानका कारण भी है, इसमें क्या विरोध है ? समाधानमें कहते हैं कि यदि पदार्थ और प्रकाश को ज्ञानका कारण मानोगे कि इसमें ज्ञानकी उत्पत्ति होती है तो जो ज्ञानके कारण हैं चक्षु आदिक इन्द्रियाँ तो वे इन्द्रियां जैसे ज्ञेय तो नहीं बनतीं, इसी प्रकार यदि पदार्थ और प्रकाश ज्ञानके कारण मान लिए जायें तो फिर ये ज्ञेय नहीं हो सकते । आँखके द्वारा हम जानते हैं पर आँखको भी हम जानते हैं क्या ? आँख करण है पर आँख ज्ञेय नहीं बन रही । जिस समय हम दर्पणको देखकर आँखका ज्ञान करते हैं उस समय हम आँखको नहीं जान रहे, किन्तु दर्पणमें जो आँखका प्रतिबिम्ब है बाहरका पदार्थ, उसको जान रहे हैं । आँखको कोई जानता ही नहीं । जितने देखने वाले लोग हैं वे अपनी अपनी आँखको जानते नहीं हैं क्योंकि वह ज्ञानका कारण बना हुआ है । तो जो ज्ञानका कारण हो वह ज्ञेय नहीं बनता । पदार्थ, प्रकाश यदि ज्ञानका कारण बन जाय तो फिर यह ज्ञेय नहीं हो सकता ।

ज्ञानकी अर्थकार्यताकी प्रत्यक्षसे असिद्धि-शङ्काकार यहाँ यह सिद्ध करना चाहता है कि ज्ञान पदार्थका कार्य है । ज्ञानकी उत्पत्ति पदार्थसे होती है । जिस पदार्थको हम जानें वह ज्ञान उस पदार्थसे उत्पन्न हुआ है । और, सिद्धान्त यह कह रहा है कि ज्ञानकी उत्पत्ति तो वस्तुतः आत्मासे होती है, पर निमित्त करणकी अपेक्षा इन्द्रियसे होगी, मनसे होगी । पदार्थसे ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होती, किन्तु ज्ञानमें पदार्थ विषय होता है । यदि ज्ञान पदार्थका कार्य है तो यह ज्ञान पदार्थका कार्य है, यह किस प्रमाणसे जाना ? प्रत्यक्षसे जाना या अन्य प्रमाणसे जाना ? प्रत्यक्षसे जाना, यदि यह कहोगे तो उसी प्रत्यक्षसे जाना गया या दूसरे प्रत्यक्षसे जाना ? जो प्रत्यक्ष ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न हुआ है उस ही प्रत्यक्ष से 'यह ज्ञान पदार्थका कार्य है" ऐसा जान लिया जाय तो यह बात बिरुद्ध है, क्योंकि सबको अनुभव है कि वहाँपर केवल पदार्थ का ही अनुभव होता है । हमने आँखसे भींट जाना तो हमने भींट है यह निर्णय किया

यह ज्ञान नहीं हो पाता कि भींटसे हमारा ज्ञान पैदा हुआ, ऐसा कोई कहता भी नहीं। यदि वह ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न होता ऐसा अनुभव होता तो इसमें विवादकी बात भी न थी। जो बात प्रत्यक्ष सिद्ध है उसमें कोई विवाद नहीं करना। जो ज्ञान जिस पदार्थसे उत्पन्न हुआ, जिस पदार्थका कार्य है ऐसी बात हमने दूसरे प्रत्यक्षसे जाना, यह भी बात ठीक नहीं है, दूसरे प्रत्यक्षसे भी हम केवल पदार्थ मात्रका ही अनुभव करते हैं, और इस तरहसे तो अनवस्था दोष हो जायगा। तो यह बात किसी प्रमाण से नहीं जानी गयी कि यह ज्ञान पदार्थका कार्य है।

ज्ञानमें अर्थकार्यत्वकी प्रमाणान्तरसे असिद्धि— यदि यह कहो कि प्रत्यक्ष से तो सिद्ध नहीं होता कि यह ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न हुआ है, पर अन्य प्रमाणसे सिद्ध होता है। तो वह प्रमाण जिससे तुम यह सिद्ध करोगे कि ज्ञानका कारण पदार्थ है, ज्ञान पदार्थका कार्य है, तो वह प्रमाण क्या ज्ञानमें बना है या पदार्थमें बना है या ज्ञान और पदार्थ दोनोंमें आया ? यदि कहो कि ज्ञानमें ही बना या अर्थमें ही बना, तो केवल ज्ञानमें ही बना ऐसे प्रमाणसे भी यह सिद्ध नहीं हो सकता कि यह ज्ञान पदार्थ का कार्य है। और, केवल अर्थके ही ज्ञान बने तो उससे भी यह सिद्ध नहीं होता। ज्ञान पदार्थका कार्य है. दोनोंके बारेमें ज्ञान हो तो कह सकते हैं। जैसे कोई सिर्फ अग्निको जान रहा हो तो यह नहीं कह सकते कि अग्निका काम धूम है, या केवल धूम ज्ञात हो रहा हो तो न कहेंगे। विचारमें दोनों पदार्थ आये हों तो कह सकते हैं कि धुवां अग्निका कार्य है। कारण और कार्य दोनों ज्ञानोंमें हों तब ही तो कह सकते हैं कि यह अमुकका कार्य है। तो दोनोंके विषयोंका ज्ञान हो तब कारण कार्यकी बात सोची जा सकती है। पदार्थका और ज्ञानका ग्रहण करने वाला कोई एक प्रमाण हुये बिना यदि ज्ञानको पदार्थका कार्य कहते हो तो ऐसा किसीके ज्ञान हो ही नहीं रहा यहाँ। तुम्हारा यह ज्ञान अमुक पदार्थका कार्य है ऐसा कौन ज्ञान करता है। पदार्थको जानते ही सीधे ही यह पदार्थ है इतना मात्र अनुभव होता है। और, दूसरे शङ्काकार ने भी यह नहीं माना कि ज्ञानमें लगा हुआ ज्ञान अर्थमें लगे या अर्थमें लगा हुआ ज्ञान ज्ञानमें लगे। और, अगर मानलें तो यह विलक्षण जातिका नया ज्ञान फिर बन गया। फिर प्रमाणोंकी संख्या जो कहा है उसका उल्लंघन हो जायगा। इससे यह नहीं सिद्ध किया जा सकता कि ज्ञान पदार्थका कार्य है।

अन्वयव्यतिरेकके माध्यमसे ज्ञानमें अर्थालोककार्यत्वकी आशङ्का— शङ्काकार अब यहाँ एक अनुमान रख रहा है कि ज्ञान पदार्थ और प्रकाशका कार्य है क्योंकि ज्ञानका पदार्थ और प्रकाशके साथ अन्वय व्यतिरेक है अर्थात् पदार्थ और प्रकाशके होनेपर ही ज्ञान होता है व पदार्थ प्रकाश न हो तो ज्ञान नहीं होता। तो जिसके साथ अन्वय व्यतिरेक रहता है वह उसका कार्य है। जैसे अग्निके होनेपर ही धुवाँ होता है, अग्निके न होनेपर धुवाँ नहीं होता। इससे धुवां अग्निका कार्य है।

इसी तरह यह ज्ञान भी पदार्थ और प्रकाशके होनेपर होता है और पदार्थ प्रकाश न हो तो नहीं होता है। इससे ज्ञानपदार्थका कार्य है, पक्षकार अपनी ऐसी शङ्का रख रहा है, उसके उत्तरमें आचार्यदेव कहते हैं :—

तदन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावाच्च केशोण्डुकज्ञानवन्नक्तंचरज्ञानवच्च ॥२-७॥

अर्थ व प्रकाशका ज्ञानके साथ अन्वव्ययतिरेकके अभावका वर्णन— इस सूत्रमें कहते हैं कि पदार्थ और प्रकाशका ज्ञानके साथ अन्वय व्यतिरेक नहीं है, पूर्ण नियम नहीं है कि पदार्थ और प्रकाश हो तब ही ज्ञान बने। कितने ही ज्ञान पदार्थ नहीं है, सामने प्रकाश भी नहीं है, पर बराबर चल रहा है। दृष्टान्तमें कह रहे हैं कि जैसे— कभी ऐसा भ्रम हो जाता है कि आकाश में कुछ केश लटक रहे हैं अथवा कुछ छोटे छोटे मच्छरसे उड़ रहे हैं, अथवा रात्रिमें चलने वाले जानवर बिल्ली आदि का ज्ञान, प्रकाश नहीं है फिर भी ज्ञान हो रहा है, तो यह प्रत्यक्ष ज्ञान पदार्थ और प्रकाशके बिना भी हो जाता है, परन्तु इन्द्रिय और मनके बिना ज्ञान नहीं होता। इससे ज्ञानका कारण इन्द्रिय और मनका कहना ठीक है, किन्तु पदार्थ और प्रकाशको ज्ञानका कारण कहना ठीक नहीं है। पदार्थ और प्रकाश इन दोनोंसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है, ऐसा एक सिद्धान्त अपना मंतव्य रखता है। समाधानमें कहा जा रहा है कि अर्थ और प्रकाश दोनोंका अन्यवव्यतिरेक सम्बन्ध नहीं। पहिले यह हेतु दिया था चूँकि पदार्थ और प्रकाश दोनों ज्ञेय हैं, जाननेमें आते हैं इस कारण ज्ञानके कारण नहीं हो सकते। अब दूसरा हेतु और दे रहे हैं कि यह तो बात सही है ही, पर इन दोनोंके साथ ज्ञानका अन्वयव्यतिरेक भी नहीं है इस कारण भी पदार्थ और प्रकाशक ज्ञानके कारण नहीं हैं। जैसे केशोण्डुक। पदार्थ नहीं है तब भी केशोण्डुक ज्ञान हो जाता है।

केशोण्डुक का अर्थ— केशोण्डुकके अर्थ अनेक किए जा सकते हैं— कहीं आकाशमें महिलावोंके केशोंके विरल प्रसारकी भांति कुछ दिख सकता है, उसमें मच्छरका भी ज्ञान हो सकता है। वहां कुछ भी नहीं पर आकाशमें केशोंका गुच्छा सा दिखने लखता है अथवा मच्छरोंका झुण्ड जैसा दिखने लगता है। अथवा कभी भींटके सामने या आकाशमें ही कुछ दो चार अंगुलके लम्बे कुछ आकारमें नजरसे आने लगते हैं बिन्दुसमूह और उनको आंख हिलाकर देखें तो वह पीछे भी हो जाता है और आंखोंको दूसरी बगल करे तो वहां आ जाता है। तो यहां पदार्थ तो कुछ है नहीं, उस प्रकारका कोई जंतुका छाया चित्रसा नजर आता है, यह बात तब सम्भव होती है जब कुछ नेत्रको पलकका रोम उस प्रकारसे सामने छायारूप चलने लगती है और कीड़ेकी सकलमें दिख जाता है पदार्थ नहीं है और ज्ञान हो रहा है, तो पदार्थ के होनेपर ही ज्ञान हो पदार्थके न होनेपर ज्ञान न हो, यदि ऐसा अन्वयव्यतिरेक संबंध होता तब तो ज्ञानका कारण पदार्थको बताया जा सकता है किन्तु ऐसा संबंध

है ही नहीं। जिसको काँमला रोग हो जाता है उसे भी इस प्रकारकी छाया सी नजर आने लगती है।

केशोण्डुक ज्ञानमें व्यापारके स्वामित्वके सम्बन्धमें चार विकल्प— जहां पदार्थ तो है नहीं और ज्ञान हो जाता कि यह केशोण्डुक है तो बतलावो कि जो व्यापार है वह किसका है? किसकी करतूतसे वह ज्ञान हुआ है? क्या केशोण्डुक का व्यापार है जहां कि इस तरहका ज्ञान हो रहा या नेत्रकी पलकोंके रोमोंका व्यापार है जो बाहरमें कुछ ऐसा ज्ञान हो रहा कि कोई लम्बासा मच्छर या कोई छोटा सा सांपका बच्चा, इस प्रकारकी छाया दिखने लगती है। ऐसे भ्रान्त कुछ ज्ञानकी उत्पत्ति बारेमें प्रश्न किया जा रहा है। जब कभी नेत्रमें कामल रोग हो अथवा पलक भी इस तरहकी कुछ टेढ़ी मेढ़ी हो जाय तो ऐसी कुछ छाया नजर आती है तो क्या वह नेत्रके रोमोंका व्यापार है? अथवा नेत्रकी पलकोंका व्यापार है या कामल आदिक रोगोंका? किसकी करतूतसे वह केशोण्डुक ज्ञान बना है?

केश, नयनपक्ष्म व नयनरोमोंके व्यापारकी केशोण्डुक ज्ञानमें असिद्धि— केशोंका व्यापार तो कह नहीं सकते। वह चीज हो नहीं है। वहां तो भ्रम हो रहा है। अगर केशोण्डुक हो तो भ्रम नहीं कहलाया, फिर तो सत्यज्ञान है। अगर कहो नेत्रकी पलकका व्यापार है तो नेत्रके पलकसे ज्ञान उत्पन्न हुआ तो पलकोंमें ही ज्ञान आना चाहिए। बाहर क्यों भ्रम होता है कि यह केशोण्डुक है? आकाशमें अवलम्बन रहे और सामने मौजूद है। इस प्रकारसे केशोण्डुकका जो आकार होता है उसका प्रतिभास न हुआ फिर। अगर नेत्रकी पलकका काम है यह ज्ञान कराना तो पलकोंमें ही ज्ञान हो, दूर देशमें क्यों ज्ञान होता है? माना तो है पलकोंमें व्यापार और ज्ञान होवे आकाश में ऐसा नहीं हो सकना चाहिए। यदि कहो कि वह जो कुछ दिखता है वे नेत्रके केश ही दिखते हैं, हैं नहीं वहां पर नेत्रके पलकोंके केश ही आकाशमें हैं उस प्रकार नजर आते हैं। तो कहते हैं कि जिसके नयनकेश न हों कोई ऐसा कामल रोगी हो जिसके पलक गिर जाते हों, फिर उसे उस प्रकारका प्रतिभास न होना चाहिए। तो तात्पर्य यह है कि पदार्थके न होनेपर भी ज्ञान हो रहा है, इससे यह सिद्ध है कि ज्ञान उस पदार्थका कारण नहीं है। ज्ञानके कारण तो इन्द्रिय आदिक हैं सो कोई इस भावेन्द्रिय और द्रव्येन्द्रिय, अर्थात् भीतर चाहिये योग्यता, ज्ञानावरणका क्षयोपशम और बाहरमें हों निर्दोष इन्द्रियाँ तो ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। ज्ञानकी उत्पत्तिमें पदार्थ कारण नहीं है किन्तु ज्ञानमें पदार्थ केवल विषय है और पदार्थ ज्ञेय होता है।

केशोण्डुकज्ञानमें भ्रमके माध्यमसे अर्थकार्यताकी सिद्धिपर प्रश्नोत्तर— शायद यह कहो कि भ्रम होनेके कारण नेत्रके केश ही आकाशमें ज्ञान उत्पन्न कर देते हैं तो कहते हैं कि इस तरह हमारा मंतव्य भी मान लिया जाना चाहिए कि फिर चक्षु मौर मन ये रूपका ज्ञान उत्पन्न कर देते हैं, जब अन्य विषयमें उत्पन्न हुआ ज्ञान,

अन्य पदार्थसे उत्पन्न हुआ ज्ञान अन्य पदार्थका, विषयका ज्ञान करने लग गया, अन्य विषयका ग्राहक बन गया तो ज्ञान करने लग गया, अन्य विषयका ग्राहक बन गया तो ज्ञानसे भिन्न जो इन्द्रिय हैं उनके कारणसे भी ज्ञान उत्पन्न हो जाय, इसमें क्या विरोध ? इससे जो सीधी स्पष्ट बात है वही मानना चाहिए। ज्ञान होता है इन्द्रियसे और, आबाल गोपाल सभी मनुष्य ऐसा व्यवहार करते हैं कहते हैं कि इन्द्रियसे ज्ञान हुआ, पदार्थसे ज्ञान उत्पन्न हुआ, ऐसा तो किसी को कहते हुए भी नहीं सुना है।

ज्ञानकी अर्थकार्यताका व्यभिचार— अब चौथा पक्ष लोगे कि कामल आदिक रोग उस ज्ञानके कारण होते हैं उन रोगोंसे इसे हुआ वह ज्ञान। असत् भी हैं केश आदिक तो भी उनको जान लेते हैं। तो फिर इससे यह सिद्ध हुआ ना, कि निर्मल नेत्रसे और निर्मल मनके कारणसे उत्पन्न हुआ ज्ञान सत्को विषय करता है और सदोष इन्द्रियसे उत्पन्न हुआ ज्ञान एक भ्रान्तिको विषय करता है तो आखिर इन्द्रिय और मनकी ही बात आयी। अगर कामल आदिक रोग होनेसे बाहरमें पदार्थ नहीं है और पदार्थका ज्ञान हुआ है तो इसका अर्थ यह है कि इन्द्रियमें दोष आया इसलिए भ्रान्त ज्ञान हुआ और इन्द्रियमें दोष न रहे तो यथार्थ ज्ञान हुआ तो ज्ञानका कारण अब इन्द्रियां रहीं या पदार्थ ? इन्द्रियां रही। फिर कैसे यह कह सकते कि ज्ञान जो है वह पदार्थका कार्य है. एक तो केशोण्डुक ज्ञानके साथ हेतु व्यभिचारी है कि केशोण्डुक-पदार्थ है नहीं और ज्ञान हो रहा है तो ज्ञान अर्थका कार्य नहीं हो सकता।

ज्ञानकी अर्थकार्यताका संशयज्ञानके साथ व्यभिचार— अब दूसरी बात यह सोचिये कि संशयज्ञानमें भी संशयका कल्पित पदार्थ नहीं है और ज्ञान हो रहा है, सशयज्ञानमें अनेक कोटि वाले ज्ञान होते हैं यह सीप है या चाँदी है इस प्रकारका जो ज्ञान हो रहा है, ऐसा ज्ञान होनेके लिए वहाँ दोनों पदार्थ मौजूद होने चाहिएँ यदि पदार्थसे ज्ञान उत्पन्न होता है यह माना जाय। हों दोनों पदार्थ तो फिर उसे संशय क्यों कहते, भ्रान्त क्यों कहते ? सही ज्ञान कहलाना चाहिए। और, संशयज्ञान तो तभी होता है जब वहाँ पदार्थ तो अनेक नहीं हैं, पदार्थ तो कोई एक है और कोटियां अनेक बन रही हैं यह सीप है या चाँदी है या काँच है अनेक कोटियां बन सकती हैं। एक जगह स्थाणु और पुरुष ये दोनों कैसे सिद्ध हो सकते हैं पदार्थ तो कोई एक पड़ा है और ज्ञान यहाँ संशय चल रहा है तो जब दो पदार्थ वहाँ नहीं हैं तो संशयज्ञानकी उत्पत्ति कैसे हो गई ? इससे सिद्ध है कि ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न नहीं होता। वह तो अपनी योग्यतासे अपनी ही विधिसे उत्पन्न हुआ करता है।

ज्ञानकी अपने योग्य अन्तरङ्ग व वहिरङ्गकरणसे उत्पत्ति—प्रकरणमें केवल इतनी बात निरखना है कि ज्ञान वस्तुत: तो आत्मासे ही उत्पन्न होता है, किन्तु यह उपादान तो प्रतिसमय है। कोई भी ज्ञान किया जा रहा हो, सब स्थितियोंमें आत्मा है। तो कोई निमित्तकी बात घटित होगी कि जिसके कारणसे अमुक पदार्थका

ज्ञान हुआ। तो सांव्यवहारिक प्रत्यक्षमें एकदेश विशद ज्ञान होता है, वह ज्ञान इन्द्रिय और अनिन्द्रियके निमित्तसे होता है। इसमें ज्ञेय पदार्थ कारण नहीं है। पदार्थको कारण मानने वाले उसमें बहुत सी युक्तियां भी देंगे कि पदार्थ यदि कारण नहीं है तो इस समय यही ज्ञान क्यों हुआ, अन्य ज्ञान क्यों न हुए ? यही ज्ञान हुआ, घटका ही ज्ञान हुआ, इसका मतलब है कि घटसे ज्ञान उत्पन्न होता है उस ज्ञानमें घट जाना गया। तो ऐसी युक्तियां तो वे देंगे किन्तु ऐसा न किसीको प्रत्यक्षसे अनुभव है न कोई व्यवहार ऐसा करता है और न अनुमानसे सिद्ध होता है। ज्ञान तो अपने आत्माकी योग्यतासे उत्पन्न होता और निमित्त कारणकी अपेक्षा यह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय द्रव्यमन भावमन इनके निमित्तसे होता है। इन्द्रिय हों निर्दोष और उपयोग उस समय लग रहा हो उस पदार्थमें तो उस पदार्थका ज्ञान हो जाता है। दोनोंका योग चाहिए— द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय। भावेन्द्रिय तो है उपयोग भी कर रहे क्षयोपशम भी है, पर द्रव्येन्द्रिय फूटी है, आंख फूटी है तो वह ज्ञान नहीं हो रहा। द्रव्य इन्द्रिय निर्दोष है, आँख सही है और उपयोग नहीं दिया जा रहा है तो भी पदार्थका ज्ञान नहीं हो रहा। तो यह साँव्यवहारिक प्रत्यक्ष ज्ञान इन्द्रिय और मन के कारणसे होता है, पदार्थ और प्रकाशके कारणसे नहीं होता। जिस ज्ञानको प्रमाण सिद्ध किया जा रहा है इस समूचे ग्रन्थमें वह ज्ञान कैसे उत्पन्न होता है, क्या स्वरूप रखता है इन सब बातोंकी दर्शनशास्त्रमें युक्ति और हेतु देकर सिद्ध किया जा रहा है।

पूर्वपक्षकार द्वारा संशयज्ञानके अर्थजत्वकी सिद्धि जो लोग ज्ञानकी उत्पत्ति पदार्थसे मानते हैं उनको यह दोष दिया गया था कि संशय ज्ञान तो किसी पदार्थसे उत्पन्न नहीं होता और है ज्ञान, तो यह बात तो न रही कि ज्ञान सभी पदार्थों से उत्पन्न होता है। तो इसपर शङ्काकार कहता है कि संशयज्ञान भी पदार्थसे उत्पन्न होता है। कैसे ? संशयज्ञान होता है इस स्थितिमें कि जब सामान्यका तो प्रत्यक्ष हो और विशेषका प्रत्यक्ष न हो और दोनों पदार्थोंके विशेषका स्मरण हो। जैसे यह संशय ज्ञान हो कि यह सीप है या चाँदी ? तो सीप और चाँदी इन दोनोंमें रहनेवाला जो सामान्य गुण है सफेद होना, उसका तो प्रत्यक्ष और सीपमें जो विशेष खास बात है और चाँदीमें जो विशेष गुण है उन दोनोंका प्रत्यक्ष है नहीं। यदि उन दोनोंका प्रत्यक्ष होता तो संशय ही क्यों होता ? और दोनोंके विशेषका स्मरण हुआ तब यह ज्ञान बना कि सीप है या चांदी ? और इसी तरह विपरीत ज्ञानमें क्या होता है कि विद्यमान जो विशेष है जो पदार्थ सामने है, जो विशेष मौजूद है उससे विपरीत विषय का स्मरण है तब होता है विपर्यय ज्ञान। तो इस तरह संशय ज्ञान और विपर्ययज्ञान इन दोनोंकी उत्पत्ति पदार्थसे हो गई।

संशयज्ञानके कारणके विषयमें सामान्य, विशेष व उभयके तीन विकल्पोंमेंसे प्रथम विकल्पका निराकरण—संशयज्ञानकी अर्थजन्यताकी समस्या

के समाधानमें पूछ रहे हैं कि यह बतलावो कि संशयज्ञानमें तुम सामान्यको प्रत्यक्ष बनाते हो। सीप और चाँदी इन दोनोंमें जो बात पायी जाती है वह है सामान्य गुण, वह क्या है ? केवल सफेदी। तो सामान्य हेतु पड़ा संशयज्ञानमें या विशेष हेतु पड़ा या दोनों ? सामान्यको तो कह नहीं सकते, क्योंकि सामान्यमें संशय आदिक होते ही नहीं। जब भी संशय बनता है तो विशेषके बारेमें ही बनता है। सीप और चाँदी इन दोनोंमें पाई जाने वाली जो सामान्यतया सफेदी है क्या उसके बारेमें संशय है ? अथवा जो विशेष है सीप या चाँदी उसमें रखे हैं ? सामान्यमें संशय आदिक होते ही नहीं क्योंकि सामान्यका तो प्रत्यक्ष है और वह पक्का प्रमाणभूत है। जो सफेदी मात्र जाननेमें आयी उसमें क्या झूठापन है ? जिस सामान्यका प्रत्यक्ष है उसमें संशय या विरोध नहीं होता। विशेष विषयका संशयज्ञान हुआ करता है सो विशेषको विषय करके उत्पन्न होने वाला संशयज्ञान क्या सामान्यसे उत्पन्न होता है ? उस ज्ञानको सामान्य नहीं उत्पन्न कर सकता, क्योंकि अन्यको विषय करने वाला ज्ञान किसी अन्य पदार्थसे उत्पन्न नहीं हुआ करता। विशेषको विषय करने वाला संशयज्ञान सामान्यसे उत्पन्न नहीं हो सकता। अगर अन्यको विषय करने वाला अन्यसे उत्पन्न हो जाता है, ऐसा मान लिया जायेगा तो हम कहेंगे कि रूपका ज्ञान इससे उत्पन्न हो जाय। और फिर जैसे सामान्यसे उत्पन्न हुआ वह संशयज्ञान। असत्में विशेषका विषय कर बैठे। सीप और चाँदीमें जो एक सफेदी प्रतीत हुई उसमें शङ्काकारके मतमें संशयज्ञान बना और उसने विषय किया विशेषको कि सीप है या चाँदी। तो सामान्यसे उत्पन्न हुआ वह ज्ञान यदि असत् विशेषका ज्ञान कराने वाला हो गया तो इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न हुआ सत् सामान्य आदिकका भी ज्ञान करा दे तो यह भी अर्थ ज्ञानका कारण नहीं है फिर तो संशयज्ञानमें सामान्य ज्ञानका कारण है, सामान्यसे ज्ञानकी उत्पत्ति हुई है इतना भी कल्पनाका परिश्रम नहीं करना पड़ेगा। व्यर्थ है यह परिश्रम करना। इतना भी क्यों सोचते हो कि संशयज्ञान सामान्यसे उत्पन्न हुआ संशयज्ञान विशेषका वेदक है तो सीधा मान लो कि वह संशयज्ञान इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न होता है। सामान्यसे भी उत्पन्न होनेकी कल्पना करना व्यर्थ है। तो सामान्य तो संशयज्ञानका कारण है नहीं।

विशेष या उभयको संशयज्ञानका हेतु माननेके विकल्पोंका निराकरण — क्या विशेष है संशयज्ञान का कारण ? विशेष भी संशयज्ञानका कारण नहीं बन सकता, क्योंकि सामने पड़ी तो है सीप और संशय हो गया कि सीप है या चाँदी ? तो उसमें कौन सा विशेष पड़ा है ? अगर सीपसे वह ज्ञान उत्पन्न हुआ है तो सीपको ही जाना। संशय क्या रहा ? विशेषसे उत्पन्न ज्ञानके कारणमें दोनों विशेष पड़े हुए हैं उससे संशयज्ञान बना, ऐसा कहो तो वह भी सही ज्ञान रहे, संशय कैसे बने। यदि कहो कि दोनों तो नहीं पड़े, सीप पड़ी है, तो सीप पड़ी है, उससे उत्पन्न हुआ ज्ञान 'यह क्या चाँदी है, चाँदी है' इस प्रकारकी कोटि कैसे बना सकता है ? क्योंकि चाँदी

विशेष है नहीं और अन्यसे उत्पन्न ज्ञान अन्यको विषय करने लगे तो इस ज्ञानमें भी पदार्थ कारण है ज्ञानके बननेमें, ऐसी कल्पना करना भी व्यर्थ है, ऐसा सशयज्ञान न सामान्यसे उत्पन्न हुआ और न विशेषसे और न दोनोंसे। प्रथम तो वे दोनों वहां हैं नहीं, उत्पन्न कैसे हों ? पड़ी तो है एक ही चीज। और यदि दोनोंको हेतु मान लें तो एक एक पक्षमें जो दोष दिया है वही यहाँ लग गया। तो यह निश्चित् है कि संशय ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न नहीं हुआ। वहाँ तो अपनी योग्यतासे ज्ञानने दो कोटि वाला बोध उत्पन्न किया। तो ऐसे ही सारे ज्ञान अपने कारणसे होते हैं पदार्थसे नहीं होते।

ज्ञानकी अर्थजतापर दिये गये हेतुके संशयज्ञानके साथ व्यभिचारपर प्रश्नोत्तर – अब शङ्काकार कहता है कि वह संशयज्ञान सही नहीं है, भ्रान्त है। तो भ्रान्त ज्ञान उस कारणसे उत्पन्न हुआ है, उसमें पदार्थ कारण है। यह बात पूरी सिद्ध नहीं हो सकी, व्यभिचार आ अगा तो इस ज्ञानमें व्यभिचार आनेसे कहीं सारे ज्ञानोंमें व्यभिचार न आयगा। अगर ज्ञान पदार्थोंके कार्य हैं ऐसा अनुमान बनाया और यह बात उस संशय ज्ञानमें नहीं घटित होती तो न हो, हमारे बाकी सब ज्ञानोंमें तो घटित होती है। संशयज्ञान तो भ्रान्त है। यह भी कहना ठीक नहीं, क्योंकि चाहे भ्रान्त ज्ञान हो चाहे अभ्रान्त हो, ज्ञानकी पद्धति ही यह है कि अपनेको जाने और परको जाने। मिथ्याज्ञान भी स्वपरग्राहक है और सम्यग्ज्ञान भी स्वपरग्राहक है। फर्क इतना रह जाता है कि कोई ज्ञान सत् परपदार्थोंको ग्रहण करता है और कोई ज्ञान ज्ञान असत्को ग्रहण करता है। जिसमें सम्वाद है निर्णय है वह सत्को ग्रहण कर रहा और जिसमें विसम्बाद हो वह असत्को ग्रहण कर रहा। इतना तो है अन्तर, पर ज्ञान सारे स्वपर ग्राहक होते हैं। मिथ्याज्ञान भी स्वपर ग्राहक है। जो ज्ञान है वह अपने को भी समझ रहा है और पर को भी। तो कोई सत्को विषय करता कोई असत्को विषय करता, इतने मात्रके भेदसे वह भेद न पड़ जायगा जिससे तुम यह कह सको कि संशयज्ञान पदार्थसे नहीं उत्पन्न होता तो न सही, वह भ्रान्त है पर ये सारे ज्ञान तो उत्पन्न होते हैं। एक जगह व्यभिचार होनेसे अन्य जगह व्यभिचार नहीं कर सकते, यह बात ठीक नहीं हो सकती। अन्यथा कोई भी अनुमान न बन सकेगा। जैसे किसी हेतुने कोई व्यभिचार पहुंचाया तो यह कह दिया जायगा कि वह अन्य चीज है वह अन्य चीज है। अगर किसी चीजमें दोष आ गया तो उससे प्रकृतमें दोष नहीं हो सकता। इससे यह ज्ञान मानना चाहिए कि ज्ञान पदार्थोंसे उत्पन्न नहीं होते ज्ञानका कारण पदार्थ नहीं है, किन्तु इन्द्रिय कारण हैं, और वे इन्द्रिय दो प्रकारकी हैं – द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय तो जितने सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष हैं वे इन्द्रिय और मनके निमित्त से होते हैं, पदार्थके कारणसे नहीं होता। यह सब सांव्यवहारिक प्रत्यक्षके स्वरूपको सन्तोष सिद्ध करनेके लिए कहा जा रहा है। जो इन्द्रिय और मनके निमित्तसे उत्पन्न हो और एक देश विशद हो वह ज्ञान सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहलाता है।

ज्ञानके अर्थजत्वकी असंभवता— शङ्काकार कहता है कि ज्ञेय तो कारण

ही होता है अर्थात् पदार्थसे ज्ञान उत्पन्न होता है इस कारणसे पदार्थ ज्ञेय है। ज्ञेय अर्थको ज्ञानका कारण मानते हैं। जैसे प्रकरणमें यह बताया था कि ज्ञानकी उत्पत्ति का कारण है इन्द्रिय और मन। उसपर यह कह रहे हैं शङ्काकार कि इन्द्रिय मन है कारण तो रहा आये, पर अर्थ जरूर कारण है। जिस पदार्थका ज्ञान हो रहा है वह ज्ञान उस पदार्थसे उत्पन्न हुआ है। कारण ही ज्ञेय हो सकता है। जो कारण नहीं है वह ज्ञेय नहीं है, ऐसा यदि मानते हो तो आचार्यदेव समाधान करते हैं कि तब तो योगियोंके ज्ञानसे पहिले होने वाले पदार्थका ही उस ज्ञानसे जानना बनेगा। और योगियोंके ज्ञानके समान सभीमें ज्ञान लगा लो। ज्ञानके पहिले जो बात हुई है उसका ही ज्ञान हो सकेगा, क्योंकि पहिले समय हुआ पदार्थ ही ज्ञानका कारण बन सकता है, चाहे वह एक ही समय पहिले है, जब पदार्थ उत्पन्न हो ले तब वह ज्ञानका कारण बनेगा। पदार्थ उत्पन्न हो रहा है जिस समय उस समय तो पदार्थ उत्पन्न होनेमें ही अपना सर्वस्व जोर लगा रहा है। ज्ञानका कारण बने ? उत्पन्न हो ले तब वह पदार्थ है और उत्पन्न हुआ पहिले समयमें दूसरे समयमें वह ज्ञानका कारण बन सकता है। तो ईश्वरको जो ज्ञान हो रहा है तो वह भी उससे पहिले होने वाले पदार्थका ज्ञान होना चाहिए। ज्ञानके समय होने वाले पदार्थकी कारणता नहीं हो सकती।

ज्ञानको अर्थजत्व माननेपर सर्वज्ञत्वका अभाव जो पदार्थ उत्पन्न न हो वह भी कारण नहीं हो सकता। तो पदार्थ है ही नहीं। ईश्वर भविष्यमें होने वाले पदार्थोंका ज्ञान कर ही नहीं सकता और एक समयकी सिर्फ जानेगा। भूतकालकी। वर्तमानको भी न जानेगा। क्योंकि वह पदार्थ पहिले उत्पन्न तो हो ले तब ज्ञानका कारण बने। जब वह पदार्थ अपना स्वरूप बना ले तभी तो कोई किसीका कारण बन जाय, पदार्थ है ही नहीं उत्पन्न अर्थात् भविष्यमें जो पदार्थ होगा वह उत्पन्न है ही नहीं, और फिर भी योगियोंके ज्ञानसे उसका ज्ञान हो जाय तो अन्य ज्ञानके द्वारा जो उसका कारण नहीं है उससे भी पदार्थका ज्ञान होने लगे, क्योंकि योगियोंके ज्ञानमें तो तुमने यह मान लिया कि न भी उस समय पदार्थ है तो भी उसका ज्ञान हो जाता। जब ईश्वर ज्ञानमें तुम्हारा हेतु व्यभिचारी बन गया तो सभी ज्ञानोंमें यह बात मान लो। अर्थज्ञानका कारण नहीं बन रहा है, फिर भी पदार्थका ज्ञान होता रहे।

असत् अर्थको जाननेकी अशक्यतासे सर्वज्ञत्वकी असिद्धिका प्रसङ्ग - यदि यह कहो कि जो पदार्थ उत्पन्न नहीं हुआ, भविष्यकालमें उत्पन्न होगा या जो वर्तमानमें पदार्थ उत्पन्न हो रहा है, इसको नहीं जानता, ईश्वरका ज्ञान तो इसके मायने है कि वह सर्वज्ञ नहीं रहा। यदि कहो कि अन्य अर्थको अन्य ज्ञानके द्वारा जानेगा तो वह सर्वज्ञ नहीं रह सका। वह अन्य समयके ज्ञानसे जानेगा तो एक ही समयमें सबको नहीं जान सकता। जब भविष्यकाल आयगा और वह पदार्थ उत्पन्न हो जायगा तब उस समय ईश्वर उसे जानेगा, इस तरह तो सर्वज्ञता नहीं बनती।

एक ही समयमें सबको जाने तो सर्वज्ञता कहलाये ! दूसरी बात यह है शङ्काकारके सिद्धान्तमें कि पदार्थ तो है क्षणिक, क्षण क्षणमें नये-नये पदार्थ बनते हैं, तो पदार्थ जो ज्ञानके समयमें नहीं है उसका कैसे ग्रहण हो जायगा ? जो पदार्थ पहिले हो चुका वह अब तो नहीं है, जो पदार्थ आगे होंगे वे अब तो नहीं हैं. फिर उनका ग्रहण कैसे होगा ?

तदाकारताके ग्रहणसे अर्थज्ञताकी असिद्धि—यदि यह कहो कि तदाकार हो जाता है ज्ञान. इससे ग्रहण हो गया । नहीं भी पदार्थ है इस समय, पर जो पदार्थ उत्पन्न होंगे या जो पदार्थ बहुत अतीतमें हो चुके उनका आकार आया है ज्ञानमें इससे ज्ञान बनता है । तो प्रथम तो यह बात है कि पदार्थोंका आकार ज्ञानमें नहीं आता । जैन शासनमें जो ज्ञानको साकार माना है उसका अर्थ यह नहीं है कि जैसे दर्पणमें पदार्थका आकार आ जाता है इस तरह ज्ञानमें पदार्थका आकार आता हो । चौकी को जाना तो जितनी चौडी यह चौकी है, जितने नापको है वह आकार व हुलिया ज्ञानमें आकाररूपसे आ गई है ऐसी बात नहीं है किन्तु यह आकार ज्ञात हो गया है । इसीके मायने साकार ज्ञान है । दर्पणमें पदार्थ जैसे आकारमें आ जाता है इस तरह ज्ञानमें पदार्थका आकार नहीं आता । और, मान लो कि तदाकारताकी वजहसे वह सर्वज्ञता न आयगी, वह भी है पदार्थ अभी, जो भविष्यमें होंगे वे इस समय नहीं हैं, तिसपर भी तदाकारताकी वजहसे वे सर्वज्ञ बन गए । यदि तदाकारता मान भी ली जाय तो भगवानने आकार ग्रहण किया, पदार्थ को नहीं ग्रहण किया । अगर तदाकारता भी मान लीजाय तो तदाकारताका ज्ञानी बना वह, पदार्थका ज्ञानी नहीं बना, फिर भी वह सर्वज्ञ नहीं रहा ।

तदाकारताकी सदृशतासे भी सर्वज्ञव्यवस्थाका अभाव यदि यह कहो कि जो आकार ज्ञानमें आया है वह उस पदार्थकी तरहका आकार है, तो यहाँके आकारको जान लेनेसे वह पदार्थ भी जान लिया गया । तो कहते हैं कि यह बात तो ठीक नही है । जैसे देवदत्तकी हुलिया वाला याने देवदत्तकी ही तरहका कोई यज्ञदत्त नामका पुरुष जान लिया तो इसका अर्थ यहीं हुआ कि उसने देवदत्तको जान लिया । पदार्थका आकार ज्ञानमें आया और उस पदार्थका आया है जो अभी उत्पन्न नहीं हुआ, भविष्यमें होगा, यदि मान भी लिया जाय ऐसा तो यह आकारका ज्ञानी बना, पदार्थ का ज्ञानी नहीं बना । यदि कहो कि हम तो सादृश्यसे सर्वज्ञ मानते हैं तो इस प्रकारसे सबको ही सादृश्यसे सर्वज्ञ मान लिया जायगा, क्योंकि एक सत्का वेदन कर लिया, तो उसके मायने यह हो पड़ेगा कि चूँकि सब पदार्थोंमें सत्त्व है इसलिए सब ज्ञानमें आ गए । जब एक आकारके जान लेनेसे सब पदार्थोंका जान लेना मान लेते हो सदृशताकी वजहसे कि जैसा आकार है वैसा ही पदार्थ है तो सदृशताकी वजहसे एक के जान लेनेपर यदि सबको जान लेना मान लोगे तो अस्तित्वके नातेसे यह पदार्थ

सत् है इतने मात्रसे हमने जाना तो इसका अर्थ है कि सब सत्ज्ञानमें आ जाने चाहिएँ क्योंकि इस सत् की तरह सारे सत् हैं। फिर तो सब प्राणी सर्वज्ञ हो जायेंगे, क्योंकि प्रत्येक प्राणी किसी न किसी सत्को जान रहा है। और एक सतको जान लेनेसे एक तरहके हैं सब सत् तो एक तरहसे जान लेनेमें सारे सत्के जान लेनेकी बात आ पड़ेगी, फिर तो सारे प्राणी सर्वज्ञ हो गए, फिर यह कहना कि हमारा देवता सर्वत्र है, सर्व-प्राणी नहीं है यह बात कैसे घटित होगी ?

सत्त्वके नातेसे सबके सबका ज्ञान न माननेपर सदृशताके भी ज्ञान-करणत्वका अभाव - यदि यह कहो कि और लोगोंने अगर सत्वके नातेसे समस्त पदार्थोंको जान लिया तो जान लें इसमें हमें आपत्ति नहीं है, पर उसमें जो अन्यान्य धर्म हैं - यह नीला है, यह पीला है, इनका तो सब हमारा ज्ञान नहीं कर सकता। तो उत्तरमें कह रहे हैं कि अगर एक सत्वके नातेसे सबका ग्रहण नहीं मानते तो फिर यह अर्थ हुआ कि सदृशता ग्रहणका कारण नहीं है। एक पदार्थ सत् है और सारे पदार्थ सत् हैं तो सत्की सदृशतासे एक सत्के जान लेनेपर जब समस्त सत्का ज्ञान न होसका तो इसका अर्थ यह हुआ कि सदृशता ग्रहणका कारण नहीं है किन्तु स्वयं पदार्थ ज्ञान का कारण है। तो इस प्रकार तुम्हारा देवता सुगत यह भी सर्वज्ञ नहीं हो सका, क्योंकि तदाकारके जान लेनेसे कहीं पदार्थका ज्ञान नहीं बन बैठा। इस प्रकार यह बात युक्त नहीं बैठती कि जितने भी ज्ञान होते हैं वे पदार्थसे उत्पन्न होते हैं, यह बात ठीक नहीं बैठ सकती। पदार्थ पदार्थ हैं और वे ज्ञानके विषयभूत हैं। ज्ञानकी उत्पत्ति ज्ञानके अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग कारणसे होती है। अन्तरङ्ग कारण है योग्यता व बहिरङ्ग कारण है इन्द्रिय, मन आदि पर जो पदार्थ दिख रहे हैं वे विषय मात्र हैं, वे उत्पत्तिके कारण नहीं हैं।

कारण ही परिच्छेद्य है ऐसा माननेपर पदार्थकी उत्पद्यमानताका भी अनिर्णय —अन्य भी बात देखिये ! जो लोग ऐसा कहते हैं कि कारण ही परिच्छेद्य होता है याने ज्ञेय होता है। पदार्थसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है इस कारण पदार्थ ज्ञेय हैं तो यह बतलावो कि पदार्थकी उत्पद्यमानता यह बात किस ज्ञानसे जानी जा सकती है। आगे उत्पन्न हो रहे पदार्थके सम्बन्धमें होने वाले ज्ञानसे जाना जायगा ? या उत्पन्न हो रहे पदार्थसे पहिले हुए ज्ञानके द्वारा जाना जायगा ? या पदार्थ जो उत्पन्न हो रहा है उसके उत्तर कालमें होने वाले ज्ञानसे जाना जायगा ? पहिली बात तो युक्त यों नहीं है कि जिस समय पदार्थ उत्पन्न हो रहा है उस समय वह पदार्थ ज्ञानका कारण नहीं बन सकता। पहिले वह उत्पन्न तो हो ले तब ज्ञानका कारण बने ! दूसरी बात यों नहीं बनती कि उत्पन्न हो रहे पदार्थसे पहिले समयमें हुए ज्ञानके द्वारा ज्ञानमें यह कैसे कारण बन जायगा, क्योंकि पदार्थ उत्पन्न ही न था, उसका ज्ञान हुआ था। जो असत् है वह कारण नहीं बन सकता। क्योंकि जिस समय वह ज्ञान

हो रहा है पूर्वकालभावी उस समयमें पदार्थ उत्पन्न नहीं हो रहा, किन्तु उत्पन्न हे वेगा तो वह पूर्व ज्ञानका कारण कैसे बन सकता है ? तीसरी बात यो युक्त नहीं है कि जो पदार्थ उत्पन्न हो रहा है उसके उत्तरकालमें होने वाले ज्ञानसे यह जाना कैसे जायगा, क्योंकि जब उत्तरकाल भावी ज्ञान बनेगा उस समय यह पदार्थ नष्ट हो जायगा। उस समय यह पदार्थ उदपद्यमान न कहलायेगा, किन्तु उत्पन्न हो चुका कहलायेगा। और नष्ट भी हो चुकेगा तो तुम यह भी निर्णय नहीं कर सकते कि यह पदार्थ उत्पन्न हो रहा है। जो ऐसा माना जाय कि ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न हुआ करता है, तो इस प्रकार यह हठ छोड़ देना चाहिए कि ज्ञानकी उत्पत्ति उस पदार्थसे होती है जिस पदार्थको ज्ञान जानता है।

पदार्थसे ज्ञानकी उत्पत्ति माननेपर ईश्वरके सर्वज्ञताके अभावका प्रसङ्ग—ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न होता है ऐसा मानने वालोंमें कोई कोई नित्य ईश्वर-वादी भी हैं। उनसे कहा जा रहा है कि नित्य ईश्वर ज्ञान माननेपर तो यह मानना पड़ेगा कि ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न नहीं हुआ और फिर भी ज्ञानके द्वारा पदार्थ प्रतिच्छेद्य हुए, जान गए, क्योंकि ज्ञान नित्य है और पदार्थ अनित्य है, सादि है। तो जो ज्ञान पहिलेसे है और वह पदार्थोंके बारेमें जान रहा है तो पदार्थ नहीं हैं और फिर ये भी वे ज्ञेय हो रहे हैं। तो बिना कारण उत्पन्न हुए ज्ञान जैसे ईश्वरका है तो ऐसी ही ज्ञान जाति सबकी है। सबके ही ज्ञान अर्थसे उत्पन्न हुए न माने जाना चाहिए। इस पर शङ्काकार कहता है कि यदि पदार्थसे ज्ञानको उत्पन्न हुआ न मानोगे तो हम आपका भी ज्ञान समस्त अर्थोंको जानने वाला बन पड़ेगा। अभी तो हम यह व्यवस्था कर लेते हैं कि जो जिस पदार्थसे उत्पन्न हुआ हैं वह ज्ञान उस पदार्थको जानता है। और अब पदार्थोंसे उत्पन्न हुआ मानते नहीं तो ज्ञान सारे पदार्थोंको एक साथ जान जाय ! इसपर समाधान करते हैं कि ऐसा नहीं है। हम आपका यह ज्ञान चक्षु आदि का कार्य है क्योंकि यह ज्ञान अनित्य है, नित्य नहीं है। नित्य ज्ञान हो तो यह दोष आ सकता है कि पदार्थसे तो उत्पन्न हुआ नहीं और ज्ञान है नित्य, तो वह समस्त पदार्थोंका जाननहार बन जाय। पर चक्षु आदिक कारणोंसे हम आपके ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। इस कारण यह ज्ञान अनित्य है और प्रतिनियत शक्ति वाला है सो जितनी ज्ञानकी शक्ति है उतनेमें वह प्रतिनियत अर्थको ग्रहण करेगा। जैसे आँखोंमें देखनेकी शक्ति है, पर इसके मायने यह नहीं है कि हजारों कोशकी भी चीज देख ले। उसमें जितनी शक्ति नियत है उतना ही तो ज्ञान करेगा।

प्रतिनियत शक्तिसे प्रतिनियत कार्यकी व्यवस्था—जो एक ईश्वरकी शक्ति है वह अन्यकी याने हम आपकी भी हो जाय ऐसा तो नियम नहीं है जिससे आप यह दोष दें कि ज्ञानको अर्थजन्य न माननेपर हम आपके भी सर्वज्ञता हो पड़ेगी अन्यथा जैसे महेश्वर एक साथ सबका करने वाला है ऐसे ही समस्त प्राणी भी सारे

विश्वके करने वाले बन जायें। शक्तिका प्रतिनियम तो मानना ही पड़ेगा । अन्यथा बताओ जैसे ईश्वर इन सब पदार्थोंसे उपकृत नहीं होता, ईश्वरके किये जाने वाले पदार्थसे उसका क्या उपका है? (बल्कि देखा जाय तो ईश्वरने एक झंझट ही लिया)। फिर भी याने कार्यसमूहोंसे उपक्रियमाण न होकर भी ईश्वर अविशेषतासे समस्त कार्योंको करता है तो यों ही कुम्हार आदिक भी घट आदिकसे कुछ उपक्रियमाण नहीं देखे जाते जिससे ऐसा कह सको कि कुम्हार आदि लोग जिन पदार्थोंसे उपकृत होते उन पदार्थोंको करता है। यदि यहाँ यह कहो कि कुम्हार आदिकी शक्ति का प्रतिनियम है। जिस पुरुषमें जितनी शक्ति है वह पुरुष उस शक्तिके अनुकूल करने वाला होता है तो ऐसा ही सब जगह लगाया जायगा। ज्ञानमें भी यही बात लगा लो कि जिस ज्ञानमें जहाँ जितनी शक्तिका विकास होता है उसके अनुकूल वह पदार्थोंको जानेगा।

सामने अभाव होने पर भी पदार्थके ज्ञानकी व्यवस्था - अब शङ्काकार कह रहा है कि यदि पदार्थके अभावमें भी ज्ञानकी उत्पत्ति हो जाय याने पदार्थसे ज्ञान उत्पन्न न हो तो यह बतलावो कि जहाँ पदार्थ मौजूद नहीं है उस प्रदेशमे ज्ञान नहीं बन जाता? पदार्थ है, भीट है तभी हमने भीटका ज्ञान किया। न हो तो भी कर डालें? यदि पदार्थसे ज्ञान उत्पन्न होता नहीं और जानते हैं पदार्थको तो पदार्थ हों तो भी जानें और न पदाथ हों तो भी जानें? उत्तरमें कहते हैं कि ज्ञान होता तो है, न भी हो पदार्थ सामने तब भी जब मनका उपयोग होता है तो उसका ज्ञान होता ही है, पर यहाँ इस रूपसे कि वह भीट है। इस तरहसे ज्ञान नहीं होता कि सामने यहाँ भीट है। पदार्थ सामने न होकर भी अन्य रूपमें ज्ञानमें आ सकता है । न हो कुछ चीज फिर भी कल्पनामें स्मरणमें उसे उपयोगमें लेकर जाना जा सकता है।

एक ही ज्ञानमें बहुविध जाननेकी योग्यता यदि यह कहो कि उभी समय और भी ज्ञान हुए हैं किसी पदार्थको जाननेके समयमें केवल एक ही अंशका ज्ञान नहीं हुआ है, वहाँ और ज्ञान हुए हैं तो हां, पर प्रत्येक विषयके भेदमे क्या ज्ञान में भी भेद पड़ जाता है? जैसे एक साथ १० चीजोंका ज्ञान हुआ तो क्या वे १० ज्ञान हैं? वह तो एक ही ज्ञान है जिस ज्ञानमें १० विषय किए गए हैं । बहुविधि ज्ञान होता है, वह एक ही ज्ञान है और बहुत प्रकारकी बहुत चीजोंका ज्ञान वह ज्ञान कर लेता है। तो उस समयके ज्ञानमें जितने ज्ञान बने हैं उतने ज्ञान माने जायें, प्रकाश में भेद कर दिये जायें तो यदि एक बिजली जली और कमरेमें ५० चीजें प्रकाशित हो गई तो क्या इसका यह अर्थ हो गया कि बिजली ५० हैं? फिर तो उस बिजलीमें भेद पड़ जायेंगे। यदि यह कहो कि हाँ भेद है, पर प्रत्यभिज्ञानसे एकता जानी जाती है, यह वही बिजली है जो अभी दो मिनट पहले जल रही थी, अब जल रही है ऐसा प्रत्यभिज्ञान होनेसे प्रदीपमें अगर एकता मानते हो तो प्रत्यभिज्ञानके ज्ञानसे इन समस्त

पूर्वोत्तरवर्ती ज्ञानोंमें भी एकता आ जायगी। ठीक यह है कि ज्ञान अपने उपादानसे अपनी उत्पत्तिके कारणभूत इन्द्रिय मनसे उत्पन्न होता है, पदार्थसे ज्ञान उत्पन्न नहीं हुए।

ज्ञानकी आत्मामें उत्पत्ति और योग्यतानुसार ज्ञानके कार्यकी व्यवस्था--शङ्काकार कहता है कि यदि पदार्थके अभावमें भी ज्ञान होने लगे तो जो अतीत वस्तु है या जो भविष्यकी वस्तु हैं या जो बहुत दूर रखी हुई चीज है उन सब के सब पुरुषोंको ज्ञान हो जाना चाहिए क्योंकि पदार्थके अभावमें ज्ञान होने लगा। सामने नहीं है पदार्थ फिर भी ज्ञान होता है। पदार्थसे ज्ञानकी उत्पत्ति न मानें तो सारे पदार्थोंका चाहे वह भूत भविष्यमें हो, चाहे अत्यन्त दूर स्थित हो, सबका ज्ञान होना चाहिए। इसपर समाधान करते हुए विकल्पोंमें पूछा जा रहा है कि उन पदार्थों में ज्ञान हो जाय इसका तुम क्या अर्थ लगाते हो? पदार्थमें ज्ञान उत्पन्न हो जाय यह उसका अर्थ है या उन पदार्थोंका ग्राहक बन जाय ज्ञान, यह उसका अर्थ है। यदि यह कहोगे कि पदार्थमें ज्ञान उत्पन्न हो जाय तो यह बात युक्त नहीं है। जो सामने पदार्थ है, न उन पदार्थोंमें ज्ञान उत्पन्न होता है और न भूत भविष्यके पदार्थोंमें ज्ञान उत्पन्न होता है। ज्ञान तो आत्मामें ही होता है। आत्मामें ही ज्ञानकी उत्पत्ति मानी गई है। यदि कहो कि ज्ञान अतीत अगत पदार्थका ग्राहक हो जायगा तो कहते हैं कि यह भी युक्त नहीं है क्योंकि अयोग्य होनेसे। जो ज्ञान सर्वको जाननेमें अयोग्य है वह सर्वको नहीं जान सकता है। यदि यह दोष दे रहे हो कि पदार्थसे ज्ञान उत्पन्न होना नहीं मानते हो तो ज्ञान सब पदार्थोंका ग्रहण करने वाला हो जाय यह बात तो हम पदार्थ से ज्ञान उत्पन्न होता है इस मंतव्यमें भी दोष दे सकते हैं, पदार्थोंसे ज्ञान उत्पन्न होता है तो पदार्थ तो सारे मौजूद हैं, सब ही से ज्ञान क्यों न उत्पन्न हो जाय? किसी खास पदार्थसे ही ज्ञान क्यों बन रहा है? योग्यता तुम्हें माननी पड़ेगी कारणमें भी। तो जब तुम योग्यताको मानते हो तो सभी जगह मान लो, फिर अर्थसे ज्ञान उत्पन्न होता है ऐसी कल्पना करनेका क्यों परिश्रम करते? इसमें यह सिद्ध है कि ज्ञान पदार्थका कार्य नहीं है।

ज्ञानकी उत्पत्तिमें पदार्थकी कारणताका निराकरण—सांव्यवहारिक प्रत्यक्षका स्वरूप बताया गया था कि जो इन्द्रिय और मनके निमित्तसे उत्पन्न होता है और एकदेश विशद होता है उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं। इस लक्षणमें आपत्ति शङ्काकारने यह दी थी कि ज्ञान इन्द्रिय और मनसे नहीं उत्पन्न होता किन्तु पदार्थसे, आत्मासे, प्रकाशसे, सन्निकर्षसे उत्पन्न हुआ करता है। तो आत्मा और सन्निकर्षसे उत्पत्ति मानना योग्य नहीं है इस बातको पहिले बता दिया। आत्माकी कारणताकी यह बात है कि यद्यपि ज्ञान आत्मासे उत्पन्न होता है किन्तु आत्मा तो सदाकाल है और प्रतिनियत ज्ञान यह किसी टाइम टाइममें होता है तो आत्मा तो उपादान कारण

है व्यापक कारण है ज्ञानकी व्यवस्था बनाने वाला नहीं है कि आत्मासे ज्ञान हुआ तो यह घट जान गया। आत्मा सामन्यरूप है, वह प्रकृत कारणकी कोटिमें नहीं आता वह तो आधारभूत है। और सन्निकर्षका बहुत निराकरण कर ही चुके हैं। अब पदार्थ और प्रकाश इन दोनोंके कारणपनेकी बात रह गई। तो अभी तक यह बात सिद्ध की कि ज्ञान पदार्थका कार्य नहीं है। जड़ पदार्थ या अन्य चैतन्य पदार्थसे भी ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। ज्ञानावरणका क्षयोपशम होता है, द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रियके कारण होनेपर ज्ञान उत्पन्न होता है। यह सांव्यवहारिक ज्ञानकी उत्पत्तिके साधनों की बात बतायी गई है। तो इस प्रकार यहाँ तक ज्ञान पदार्थका कार्य नहीं है, यह बात सिद्ध की है। अब आगे ज्ञान प्रकाशका भी कार्य नहीं है, यह सिद्ध करेंगे।

प्रकाशमें ज्ञानकी उत्पादकताका निराकरण—एक सिद्धान्त यह कहता है कि ज्ञान प्रकाशका कार्य है, प्रकाश न हो तो ज्ञान नहीं हो पाता। सूर्यका प्रकाश, दीपकका प्रकाश, ये प्रकाश ज्ञानके कारण हैं. अब तक यह बात बता दी गई थी कि ज्ञानका कारण इन्द्रिय और पदार्थका सम्बन्ध नहीं है। ज्ञानका कारण पदार्थ नहीं और ज्ञानका कारण आत्मा भी नहीं, क्योंकि आत्मा तो सामान्य व्यापक है और ज्ञान है प्रतिनियत, तो आत्माको कारण मान करके ज्ञानकी व्यवस्था नहीं बनाई जा सकती अन्यथा सर्वज्ञान एक साथ होनेका प्रसङ्ग होगा। तब ज्ञानका कारण कौन है, इन्द्रिय और मन, ये कारण हैं सांव्यवहारिक प्रत्यक्षमें। उसी प्रसङ्गमें एक सिद्धान्त यह बात रख रहा था कि प्रकाश भी कारण है। उस शङ्काके समाधान में अब वर्णन चल रहा है। ज्ञान प्रकाशका कार्य नहीं है, क्योंकि जो लोग ऐसा अंजन लगा लें जो इस ही जातिका होता है कि प्रकाशकी जरूरत न पड़े और पदार्थोंको जान जाय, अथवा जो रातमें फिरने वाले बिल्ली आदिक जानवर हैं उनको प्रकाशके बिना भी ज्ञान हो रहा है तब यह बात कहाँ रही कि ज्ञानका कारण प्रकाश है।

आलोकके अभावमें भी ज्ञानकी उत्पत्ति और अन्धकारकी ज्ञेयता—शङ्काकार कहता है कि यदि ज्ञानका कारण प्रकाश न मानोगे तो अंधकार अवस्थामें भी हम आप लोगोंको ज्ञानकी उत्पत्ति हो जाना चाहिये पर होती तो नहीं अंधेरेमें हम आप लोगोंको ज्ञान तो नहीं होता। इससे आलोकके सद्भावमें ज्ञान होता है, आलोकके अभावसे ज्ञान नहीं होता इससे ज्ञान आलोकका कार्य है। यदि युक्ति-सिद्ध बातको भी न मानोगे तो हम यह कह बैठेंगे कि धुवाँ भी अग्निसे उत्पन्न नहीं होता, जो जिसके होनेपर होता है, जो जिसके न होनेपर नहीं होता। इस व्यवस्थासे तो तुमने कार्य–कारण माना नहीं। प्रकाश कारण है और ज्ञान कार्य है उसे तुम नहीं मानते तो हम यह कहेंगे कि धुवाँ भी अग्निका कारण नहीं। यह शङ्का है। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि कौन कहता है कि अंधकार अवस्थामें ज्ञान नहीं होता, कहो कि नहीं होता ज्ञान, तो यह अंधकार है, यह ज्ञान कैसे बना? अंधकारका ज्ञान

होना भी तो ज्ञान है। क्योंकि अंधकारका ज्ञान तो हुआ ना। यदि हम अन्धकारकी प्रतीति बिना यह जान जायें कि अंधेरा है तो फिर और जगह भी ज्ञानकी कल्पना करना व्यर्थ है। तब अन्धकारका ज्ञान हुए बिना हम यह बता सकते हैं, समझ सकते हैं कि अन्धेरा है तो ऐसे सारे ज्ञान कुज भी ज्ञान हुए बिना हमें समझ जाना चाहिए कि प्रकाश यह है। बतलाते हो कि अन्धकार है और कहते हो कि ज्ञान नहीं है तो यह तो अपने वचनोंसे ही विरोधकी बात होगी। अतः जैसे पदार्थसे ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होता इसी तरह प्रकाश से भी ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है। ज्ञानके जो अन्तरङ्ग बहिरङ्ग कारण हैं उनसे उत्पत्ति होती है।

प्रकाशवत् अन्धकारका अस्तित्व अब शङ्काकार यह कह रहा है कि अन्धकार नामका दुनियामें कोई पदार्थ ही नहीं है, कोई विषय ही नहीं है जो कि ज्ञान के द्वारा जाना जाय। अन्धकारका व्यवहार जो लोग किया करते हैं उसका इतना ही मात्र अर्थ है कि ज्ञानकी अनुत्पत्ति, ज्ञान न हो इसीका नाम लोगोंने अन्धकार रख दिया। जैसे रात्रिमें अँधेरेमें लोग कहने लगते हैं कि यहाँ तो हमें कुछ भी नहीं दिखता। तो कुछ न जाननेका नाम ही अन्धेरा है, ऐसा शङ्काकार अपना पक्ष रख रहा है। समाधानमें कहते में कि यदि तुम्हारी ऐसी युक्ति है तो हम यह कहेंगे कि प्रकाश दुनिया में कोई चीज नहीं है, क्योंकि निर्मल ज्ञानके सिवाय और कोई प्रकाश समझमें ही नहीं आता। तो प्रकाश भी कोई चीज नहीं है, हम यह सिद्ध करेंगे। फिर प्रकाश है यहाँ ऐसा व्यवहार क्यों करते हैं लोग ? उस व्यवहारका अर्थ इतना मात्र है कि निर्मल ज्ञान पैदा हो गया। इसके आगे प्रकाश कोई चीज ही नहीं है, यह बात अन्धकारका निषेध करने वालेके प्रति कही जा रही है, दोषापत्ति दी जा रही है।

ज्ञानमें स्वयोग्यतासे निर्मलता तथा प्रकाश एवं अन्धकारकी पुद्गल पर्यायरूपता -अब शङ्काकार कहता है कि प्रकाश न हो तो ज्ञानमें निर्मलता ही कहाँ से आयगी ? इस लिए प्रकाश कोई चीज है। इसपर यह उत्तर है कि बिल्ली आदिक को रूपका निर्मल ज्ञान कैसे हो जाता है ? रूपके सम्बन्धमें निर्मल ज्ञान कैसे प्रकट हो जाता है। प्रकाश तो नहीं है, अन्धेरा है, पर उस अन्धेरेमें बिल्ली तो एकदम सही देख लेती है, और फिर हम आप लोग अन्धेरेमें रस आदिकका ज्ञान बिल्कुल स्पष्ट कर लेते हैं। जैसे अन्धेरेमें कोई आम चखे तो उस रसका ज्ञान उसे उसी भाँतिसे होगा जैसे कि उजेलेमें तो अन्धेरेमें भी अनेक ज्ञान निर्मल हुआ करते हैं, तो यह कहा कि प्रकाश न हो तो ज्ञानमें निर्मलता कैसे आयगी ? यह ठीक नहीं है। यदि कुछ कनिठ पड रहा हो तुम्हें प्रकाश न माननेमें, तो यह ही बात अन्धकारकी है। अन्धकार भी ज्ञानमें आता है, ये दोनों पुद्गल द्रव्यकी द्रव्य पर्यायें हैं, प्रकाश भी पुद्गल द्रव्यकी द्रव्य पर्याय है और अन्धकार भी पुद्गल द्रव्यकी द्रव्य पर्याय है। तो अन्धकारका ज्ञान भी होता है और प्रकाशका भी ज्ञान होता है। ये दोनों ज्ञानके विषय हैं पर ज्ञानके कारण

नहीं हैं। प्रकाशसे ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होती।

स्वावरणक्षयोपशमज योग्यताके सिवाय अन्य प्रकारसे निर्मलताकी असिद्धि—और भी देखिये ! जो तुम्हारा कहना है कि आलोकको विषय करने वाले ज्ञानमें आलोक (प्रकाश) से निर्मलता आती है तो क्या उसी प्रकाश से आती है या अन्य प्रकाशसे। प्रकाश न हो तो ज्ञानमें निर्मलता नहीं होती ऐसा कहने वालेसे पूछा जा रहा है कि ज्ञानमें जो निर्मलता आती है वह उसी प्रकाशसे आती है जिस प्रकारसे जाना जा रहा है या निर्मलताका ज्ञान किसी अन्य प्रकाशसे होता है या अन्य किसी पदार्थसे होता है ? यदि कहो कि उसी प्रकाशसे होता है तो इसमें यह बात आई कि अपने ज्ञेयसे ही ज्ञानमें निर्मलता आ गई तब घटादिकके रूपसे भी रूपज्ञानमें निर्मलता आजावे, आलोककी कल्पना करना व्यर्थ है अथवा इतरेतराश्रय दोष हो गया। प्रकाश से ज्ञान सिद्ध हो तो ज्ञानसे प्रकाशकी सिद्धि हो और ज्ञानसे प्रकाशकी सिद्धि हो तो प्रकाशसे ज्ञानकी सिद्धि हो और, ज्ञानसे प्रकाशकी सिद्धि हो तो प्रकाशसे ज्ञानकी सिद्धि और प्रकाशसे निर्मलता सिद्ध हो तो परस्पर इसमें दोष है। यदि कहो कि अन्य प्रकाश से ज्ञानमें वैशद्य हुआ तो अनवस्था हुई फिर उस प्रकाशके उनकी निर्मलता समझनेके लिए अन्य प्रकाश मानो। यदि कहो कि अन्य पदार्थसे उस ज्ञानकी निर्मलताका बोध हो जाता है तो ठीक है, अन्यसे वैशद्य हो गया तो प्रकाशसे तो नहीं रहा। तब ज्ञान का कारण प्रकाश तो नहीं बना।

ज्ञानकी अपने ही अन्तर्बाह्य कारणोंसे उत्पत्ति बात तो यह है कि न तो बात यह है कि ज्ञानकी न तो उत्पत्ति पदार्थसे है और प्रकाशसे है और न अंधकार से है। ये तीनोंके तीनों ज्ञानके विषय हैं। ज्ञानकी उत्पत्तिके कारण तो अन्तरङ्गमें क्षयोपशम और बहिरङ्गमें द्रव्येन्द्रिय हैं। तो शङ्काकारके विकल्पमें जब अन्य पदार्थसे ज्ञानमें निर्मलता जगी तो आलोकके अभावमें जब ज्ञानकी निर्मलता बन गई तो आलोकको कारण मानना व्यर्थ है। प्रत्यक्षता होनेमें, विशदता होनेमें तो ज्ञान स्वयं कारण है। ज्ञानमें स्वयं ऐसी योग्यता है कि वही ज्ञान जान भी ले और उसी ज्ञानसे निर्मलताका भी परिचय हो जाय। जैसे जिस प्रकाशसे हम जानते हैं उसी प्रकाशसे हमारे ज्ञानमें निर्मलता भी बनती है ऐसा शङ्काकारने मान डाला। तो ज्ञानकी निर्मलतामें ज्ञानकी योग्यता ही स्वयं कारण है, प्रकाश कारण नहीं है। कई बातोंका ज्ञान प्रकाश होनेपर भी सही नहीं होता, तो प्रकाश न ज्ञानकी उत्पत्तिका कारण है और न निर्मलताका। ज्ञान ही स्वयं अपने अन्तरङ्ग बहिरङ्ग कारणोंसे बनता है और अपनी निर्मलताका परिचय करता है।

ज्ञानकी उत्पत्ति व विशदतामें प्रकाशकी कारणताका निराकरण—प्रकाशसे ज्ञान उत्पन्न होता है और प्रकाशसे ही ज्ञानमें निर्मलता उत्पन्न होती है, ऐसा कहने वालोंसे एक विकल्प यह भी किया गया था कि उस ही प्रकाशसे ज्ञानमें निर्म-

लता जगती है जिस प्रकाशसे ज्ञानकी उत्पत्ति हुई है। तो इस सम्बन्धमें ऐसा मानने पर कि उस ही प्रकाशसे ज्ञान बना और उस ही प्रकाशसे ज्ञानमें निर्मलता जगी तो इसका अर्थ यह हुआ कि उस ज्ञानका जो विषय है उस विषयसे ही ज्ञानमें निर्मलता आ गयी। तो ज्ञानके जितने जितने विषय होलें उन सबसे ज्ञानमें निर्मलता आनी चाहिए। घटके रूप आदिक भी जब जाने जा रहे हों तो उन घट आदिकसे भी घट आदिकके ज्ञानमें निर्मलता आनी चाहिए। यदि यह कहो कि घट आदिक पदार्थ तो अभासुररूप हैं, स्वच्छतारूप नहीं, चमकरूप नहीं, अप्रकाशरूप हैं इस कारण घट आदिकके रूपसे ज्ञानमें निर्मलता नहीं जगती, किन्तु प्रकाशसे ज्ञानमें वैशद्य प्रकट होता है तो यह कहना भी ठीक नहीं। यदि प्रकाशसे ज्ञानमें निर्मलता, स्पष्टता बने तो बहुत कठिन अंधकार वाली रातमें बिल्ली आदिक जीवोंको फिर विशदता न होना चाहिए, किन्तु उनके ज्ञानमें विशदता है। जो देखा वह इस प्रकार उन्हें स्पष्ट रहता है जैसे हम आप लोगोंको दिनमें स्पष्ट रहता है। सो विशदताका कारण प्रकाश नहीं है। उसका कारण तो अपने ज्ञानका आवरण करने वाले कर्मोंका विनाश है अर्थात् ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम है।

ज्ञानकी उत्पत्ति और विशदतामें स्वावरणक्षयोपशमकी कारणतापर कुछ प्रश्नोत्तर ज्ञानकी विशदताका भी कारण ज्ञानलब्धि है, ऐसी सुन कर शङ्काकार कह रहा है कि यदि ऐसी ही बात है कि ज्ञानमें निर्मलताका कारण ज्ञानावरण कर्मका हटना है तो फिर अन्धेरेमें दिया आदिक ग्रहण करना व्यर्थ हो जायगा। टार्च ले जानेकी फिर जरूरत क्या रहेगी, क्योंकि ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे ज्ञानमें निर्मलता जगती है फिर प्रकाशकी क्यों जरूरत है, प्रदीप आदिकके बिना भी ज्ञान उत्पन्न हो जाय और विशद हो जाय। तो उत्तरमें कहते हैं कि दीप आदिकका लेना अनर्थक नहीं है क्योंकि जिस प्रकार इन्द्रिय और मनसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है तो उस प्रसङ्गमें इन्द्रियने सहयोगमें, इन्द्रियके निर्दोष करनेमें इन्द्रियका सामर्थ्य बढ़ानेमें जैसे अंजन आदिक लगाये जाते हैं और उन अंजनोंका लगाना व्यर्थ नहीं है, इसी प्रकारसे ज्ञानके द्वारा जो पदार्थ जाने गए तो उस समय पर्दा हटाना, अन्धकार दूर करना, इस आवरणके दूर करनेके द्वारसे उस पदार्थमें ग्राह्यताकी विशेषता जगती है। ज्ञान तो जाननेका ही काम करता है, पर जिस पदार्थको जाना जायगा यदि उस पदार्थपर अन्धकार या वस्तु आदिकका आवरण पड़ा है तो आवरणके हटनेसे पदार्थमें ग्राह्यताकी विशेषता बन जाती है, इस कारणसे प्रदीप आदिकको लेकर चलना अनर्थक नहीं है।

बाह्य आवरणका अपनयन ग्राह्यकी ग्राह्यताविशेषकी उत्पत्तिका हेतु – पदार्थोंकी ग्राह्यताके लिए आवरणका अपनयन (हटाना) सहकारी कारण है। इतने मात्रसे कहीं प्रदीप आदिक ज्ञानके कारण न बन बैठेंगे, क्योंकि इस प्रकार यदि

कारण बनने लगेंगे तो कोई चीज पर्देके पीछे रखी है तो पर्दा अलग हटानेसे जो पदार्थका ज्ञान होता है, तो उस ज्ञानमें पर्दा हटाने वालेका हाथ भी कारण मान लो। तो यह प्रकाश आदिक आवरणका हटाना, अंधकारका दूर करना ये ज्ञान भी उत्पत्ति कारण नहीं हैं, किन्तु जो पदाथ अंधकारसे दबा है वस्तु आदिकसे छुवा है तो अंधकारके दूर कर देनेसे उस पदार्थमें ग्राह्यता विशेषकी उत्पत्ति होती है, ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हुई। तो यहाँ इस प्रसङ्गमें यह बात कही जा रही कि जैसे शङ्काकारने कहा था कि ज्ञान उत्पन्न न होना इसके अतिरिक्त और अंधकार कुछ नहीं है। ज्ञान उत्पन्न न हो बस यही अंधकार कहलाता है। तो जैसे ज्ञानकी न उत्पत्ति होनेके सिवाय अंधकार कोई वस्तु नहीं है तो वैसे ही निर्मल ज्ञान उत्पन्न होनेके सिवाय प्रकाश भी कुछ चीज नहीं है, फिर प्रकाशको ही ज्ञानकी उत्पत्तिका कारण कैसे मानोगे ?

तीव्र मंद प्रकाशकी भांति तीव्र मंद अंधकारकी प्रतीतिसे दोनोंका अस्तित्व— अब यहाँ पर शङ्काकार फिर कह रहा है कि जब लोग इस प्रकार कहते हुए जानते हुए पाये जाते हैं कि इस क्षेत्रमें प्रकाश बहुत है और यहाँ प्रकाश मंद है, जैसे सूर्य उगनेके पौन घंटा पहिले प्रकाश मंद रहता है लोग उस समय कहते हैं कि प्रकाश मंद है और जब दो चार घंटे व्यतीत हो जाते हैं तो कहते हैं कि अब तो बड़ा प्रकाश है, इस प्रकारसे प्रकाशको तीव्र और मंद कहते हैं। देखो यह मंद प्रकाश है, देखो यह तीव्र प्रकाश है, तो इस ज्ञानसे यह सिद्ध होता है कि इस लोक व्यवहारके अतिरिक्त प्रकाश नामकी कोई चीज है जब प्रकाशके बारेमें हम यह जानते हैं कि यह कम प्रकाश है यह अधिक प्रकाश है तो प्रकाश कुछ चीज है ना ? तो उत्तरमें कहते हैं कि अंधकारके बारेमें भी यह चीज जानी जाती है कि यहाँ अधिक अन्धकार है यहाँ कम। तो फिर वहाँ भी अंधकार वास्तविक सिद्ध हो जायगा। यदि कहो कि ज्ञान तो अप्रमाण है, अंधकारकी सत्ता करने वाला ज्ञान भी अप्रमाण हो जायगा। वहाँ कौन सा विश्वास लादा जा सकता है ?

प्रकाश होनेपर भी क्वचित् अंधकारकी प्रतीतिका किसीके अंधकार में प्रकाश प्रतीतिके साथ समानता— शङ्काकार अब यह कह रहा है कि जब हम बाहरसे घरमें घुसते हैं तो घरमें यद्यपि प्रकाश है पर अंधकारकी प्रतीति होती है। यह तो एक मिथ्या अंधकार मालूम हुआ। तो अंधकार कोई वास्तविक चीज नहीं रही क्योंकि प्रकाश और अंधकार एक जगह तो ठहर नहीं सकते तो वह अंधकार तो मिथ्या रहा। इसके समाधानमें कहा जा रहा है कि तब तो फिर रातको चलने वाले बिलाव आदिक जानवरोंके भी बिल आदिकमें जब वे घुसते हैं तो वहाँ दीपक आदिक का कुछ प्रकाश नहीं है फिर भी प्रकाश प्रतीत होता है तो प्रकाश भी वास्तविक चीज न रहा। यह बात युक्त नहीं है कि अगर एक जगह अंधकारका अभाव होनेसे अंधकार की प्रतीति हो गई तो सब जगह अंधकारका अभाव मान लीजिए। यदि ऐसी अव्यव-

स्था बना दी जाय तो पदार्थका अभाव होनेपर भी कहीं कहीं पदार्थकी प्रतीति होती है तो यह मान लो कि पदार्थका सर्वत्र अभाव है। फिर तो सकल शून्यता हो गई अब तो ज्ञान भी गड्ढेमें गया।

पदार्थ और प्रकाश आदिसे ज्ञानकी अजन्यताकी सिद्धि—जैसे आलोक को तुम पदार्थ मानते हो, वास्तविक मानते हो, इसी प्रकार अंधकार भी वास्तविक चीज है क्योंकि प्रकाशके अभाव होनेपर भी अंधकारमें ज्ञानकी उत्पत्ति देखी जाती है, इस कारण प्रकाश ज्ञानकी उत्पत्तिका कारण नहीं है, तो न तो ज्ञानकी उत्पत्तिका कारण प्रकाश रहा, न पदार्थ रहा न इन्द्रिय और पदार्थोंका सन्निकर्ष रहा। ये कोई बाह्य तत्त्व ज्ञानकी उत्पत्तिके कारण नहीं हैं। तब जो सांव्यवहारिक प्रत्यक्षके लक्षण में कहा गया था कि इन्द्रिय और मनके निमित्तसे उत्पन्न हुआ ज्ञान एकदेश निर्मल सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है यह लक्षण ठीक युक्तिसिद्ध है। यह ज्ञान अपने आवरक ज्ञानावरणके क्षयोपशम होनेपर प्राप्त हुई लब्धिसे, ज्ञेय पदार्थोंकी ओर उपयोग देनेसे, शारीरिक इन्द्रिय अनिन्द्रियके निमित्तसे उत्पन्न होता है। उस समय अंधकारका आवरण हटानेमें कारणभूत प्रकाश या वस्त्ररूप आवरणके अपनयन आदि जो आवश्यक हुए हैं उनसे ज्ञानकी परिणति नहीं बनती किन्तु उन पदार्थोंमें जो ग्राह्यता हानी थी उसमें ग्राह्यत्वविशेषकी प्रादुर्भूति होती है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि पदार्थ और आलोक भी ज्ञानकी उत्पत्तिके कारण नहीं हैं।

पदार्थ और प्रकाश ज्ञानको उत्पन्न न माननेपर उनके प्रकाशकी असम्भवताका प्रश्न—पदार्थ और प्रकाश ये ज्ञानके कारण नहीं होते, ऐसा सुनकर शङ्काकार पूछ रहा है कि फिर तो आलोक और अर्थका कोई प्रकाशक भी नहीं हो सकता। जब पदार्थसे ज्ञान उत्पन्न नहीं होता तो ज्ञान पदार्थको जान न सकेगा। जब प्रकाशसे ज्ञान उत्पन्न नहीं होता तो ज्ञान प्रकाशको जान न सकेगा, क्योंकि अर्थजन्य न रहा ज्ञान तो अर्थको कैसे जानेगा? प्रकाशजन्य भी न रहा तो प्रकाशको भी कैसे जानेगा? इसके उत्तरमें आचार्यदेव सूत्रमें कहते हैं—

अतज्जन्यमपि तत्प्रकाशकम् ॥ २–८ ॥

पदार्थ और प्रकाशसे ज्ञानकी उत्पत्ति न होनेपर भी ज्ञानकी अर्थालोक प्रकाशकता—यद्यपि ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न नहीं होता और प्रकाशसे भी उत्पन्न नहीं होता फिर भी उन दोनोंका प्रकाश करने वाला है। यह नियम नहीं है कि ज्ञान जिससे पैदा हो उसको ही प्रकाश करे। जैसे ज्ञान पैदा हुआ इन्द्रियसे, चक्षु इन्द्रियसे भी ज्ञान उत्पन्न हुआ, पर यह ज्ञान चक्षु इन्द्रियको नहीं जानता। तो ऐसा नियम भी नहीं बन सकता कि जिससे उत्पत्ति हुई हो उसे ही जाने। ज्ञानकी उत्पत्ति होनेमें और भी अनेक कारण हैं, जिन कारणोंका यह ज्ञानकर भी नहीं जानता, तो यह बात

न रही कि अर्थसे ज्ञान उत्पन्न होता तो अर्थको जानता । प्रकाशसे ज्ञान उत्पन्न होता तो प्रकाशको जानता । नहीं भी उत्पन्न है पदार्थसे ज्ञान तो भी पदार्थको जानता है । जैसे भींटको जाने इसमें शङ्काकार तो यह कह रहा कि भींटसे ज्ञान पैदा हुआ है तब ज्ञानने भींटको जाना । सिद्धान्त यह कहता है कि भींटमें न ज्ञान रखा है और न कोई कारणपनेकी बात है । भींट तो एक विषय हुआ । ज्ञानमें ज्ञेय हुआ । भींटसे ज्ञान उत्पन्न नहीं होता और फिर भी भींटको जान लेता है । इस सम्बन्धमें एक ऐसा दृष्टान्त दे रहे हैं कि जो दोनों वादियोंको सम्मत हो । दृष्टान्त जो भी दिया जाता है कहने वाला तो मानता ही है मगर जिसको कहा जाय वह भी मान जाय, ऐसा दृष्टान्त दिया जाता है, तो वादी और प्रतिवादी दोनोंके मानने लायक दृष्टान्त कह रहे हैं ।

प्रदीपवत् ।। २–६ ।।

अतज्जन्य होनेपर भी तत्प्रकाशकता होनेमें प्रदीपका दृष्टान्त—जैसे दीपक इन चौकी भींट आदिकसे उत्पन्न तो नहीं होता फिर भी उनका प्रकाश करता है तो यह बात न रही कि यदि उत्पन्न होता उससे तो प्रकाश करता । जिस प्रकार दीपक पदार्थसे उत्पन्न नहीं होते, फिर भी पदार्थोंके प्रकाशक हुआ करते हैं इसी प्रकार यह ज्ञान भी इन पदार्थोंसे उत्पन्न नहीं होता और फिर भी पदार्थोंका यह ज्ञान करता है सबकी समझमें आ रहा है, कि जो घठ पट आदिक चौकी टेबुल आदिक प्रकाश्य हो रहे हैं वे प्रकाश्य पदार्थ अपने प्रकाशक दीपक पदार्थको उत्पन्न नहीं करता, न यह कोई जबरदस्ती करते । इस अंधेरेमें रहने वाले पदार्थोंने क्या बिजली पर कुछ जबरदस्ती की कि तू जल तू चमक ? अरे वह तो अपने कारणसे जलेगी और उसके जलने पर ये पदार्थ प्रकाशित हो जायेंगे । तो प्रकाश्य प्रकाशकका सम्बन्ध तो देखा गया मगर यह बात नहीं देखी गई कि प्रकाश्य पदार्थसे प्रकाशक प्रदीपकी उत्पत्ति हुई हो । प्रकाश्य कहते हैं जो चीज प्रकाशमें आया और प्रकाशक कहते हैं उसे जो चीजका प्रकाश करता है ।

प्रकाश्य प्रकाशक सम्बन्धसे प्रकाशक जनक माननेपर प्रकाशकको प्रकाश्य जनक माननेका प्रसङ्ग शङ्काकार यह कह रहा कि प्रकाश्य पदार्थ न होनेपर प्रकाशकमें प्रकाशनेका सम्बन्ध नहीं जुड़ सकता । जैसे बिजली जलाया और कहते हैं ना कि यह बिजली इन चौकी टेबुल आदिककी प्रकाशक है, तो उस बिजली में प्रकाशक नाम किसने धरिया ? इस टेबुल चौकी आदिकने, जो कि प्रकाशमें आये हैं । ये पदार्थ न होते तो प्रकाशमें प्रकाशकपनेकी बात नहीं आ सकती थी, इस कारण से प्रकाश्य पदार्थ प्रकाशका जनक है ही अर्थात् पदार्थ दीपकको उत्पन्न करता है । हालाँकि लोगोंको ऐसा दिखता है कि ये पदार्थ दीपकको कहां पैदा करते, बटन दबाया, बिजली जली । तो इन टेबुल कुर्सीने बिजलीको उत्पन्न नहीं किया, पर उस बिजलीमें टेबुल कुर्सीके प्रकाशनसे प्रकाशकपना आया वह उनके कार्यसे आया । टेबुल

कुर्सीका प्रकाशक है। सम्बन्ध हैं इससे ये पदार्थ प्रदीपको उत्पन्न करते इसी प्रकार ये पदार्थ भी ज्ञानको उत्पन्न करते हैं एसी शङ्काकार बात रख रहा है। समाधानमें कहते हैं कि इसके विपरीत हम यह भी तो कह सकते हैं कि अगर प्रकाश न होता, दीपक न होता तो इस प्रकाश्य पदार्थमें प्रकाश्यपना न आता, तब तो पदार्थका जनक प्रकाशक बन जायगा। और, फिर इतरेतराश्रय दोष होगा जब प्रकाश्य सिद्ध नहीं हुआ तो प्रकाशक न रहा और जब प्रकाशक न रहा तो प्रकाश्य न रहा।

स्वकारणनिष्पन्न पदार्थोंमें सम्बन्धवश भी परस्पर कार्यकारणताकी असम्भावना—बात तो सही यह है कि अपने अपने कारणसे ये पदार्थ उत्पन्न होते हैं प्रदीप उत्पन्न होते हैं, पर यह प्रकाशक है यह प्रकाश्य है ऐसी जो व्यवहारकी व्यवस्था है प्रकाश्यत्वधर्म और प्रकाशकत्वधर्मकी जो व्यवस्था है वह अवश्य एक दूसरेकी अपेक्षासे है, पर उत्पत्ति सबकी अपने अपने कारणसे ही है। जैसे पति पत्नीका संबंध तो बतलाओ, पतिने पत्नीको उत्पन्न किया या पत्नीने पतिको? पति अपने कारणसे उत्पन्न हुआ और पत्नी अपने कारणसे उत्पन्न हुई पर पतित्व और पत्नीत्व इस धर्म की व्यवस्था उन दोनोंमें परस्परकी अपेक्षासे है। व्यवहार सम्बन्ध सोचकर उत्पत्ति तक कोई पहुँचने लगे धीरे-धीरे तो वह तो गलत है। तो जैसे पति पत्नी एक दूसरे की उत्पत्ति करने वाले नहीं हैं मगर पतिपना और पत्नीपना इस धर्मकी व्यवस्था दोनोंमें परस्परकी अपेक्षासे है, इसी प्रकार प्रकाशक और प्रकाश्यकी बात समझलो दीपक और ये कुर्सी मेज इनमेंसे किसने किसको पैदा किया? तो किसीने किसीको नहीं पैदा किया! ये दोदों अपने अपने कारणसे बने हैं परन्तु दीपक प्रकाशक है और टेबुल कुर्सी प्रकाश्य हैं, ऐसा जो उनमें प्रकाशक और प्रकाश्य धर्मकी व्यवस्था बनी वह परस्पर अपेक्षासे बनी। यदि शङ्काकार प्रकाशक प्रकाश्यत्वकी व्यवस्थापर कहे कि यह कोई इतरेतराश्रय दोष न होगा। किसी भी प्रकारकी आपत्ति न आयगी, तो स्याद्वादी कहते हैं कि पक्षकारने जो बात कही सोचकर वह तो सिद्धान्तके ही अनुकूल पड़ गई, क्योंकि ज्ञान और पदार्थ भी अपनी अपनी सामग्रीसे उत्पन्न हुए हैं। पदार्थ अपने कारणसे हुआ है, ज्ञान अपने कारणसे हुआ है, किन्तु उनमें ज्ञान तो ग्राहक है और पदार्थ ग्राह्य है। ज्ञान तो ज्ञाता है और ये पदार्थ ज्ञेय हैं। इस प्रकार उनमें जो ज्ञायकत्व और ज्ञेयत्व धर्मकी व्यवस्था है वह और चीजकी अपेक्षासे है पर उत्पत्ति तो न मान ली जायगी। ज्ञान ग्राहक है, पदार्थ ग्राह्य है, तो यह सम्बन्ध मान लेनेपर यह सम्बन्ध एक दूसरेके कार्यकारणका सम्बन्ध नहीं है। ज्ञान अपने कारणसे हुआ और पदार्थ अपने कारणसे हुआ।

प्रतीतिसिद्ध तत्त्वके अपलापमें विडम्बना—जो बात प्रतीतिमें सही बैठ रही है उसका अपलाप करनेसे कुछ लाभ नहीं है। जैसे कोई कहे कि अग्नि ठंडी होती है और इसकी युक्तियाँ भी दे दे। अग्नि ठंडी होती है क्योंकि पदार्थ होनेसे। जो जो

भी पदार्थ होते हैं वे ठंडे होते हैं, जैसे जल। तो उसके साथ माथा-पच्ची करना व्यर्थ सीधा चिमटासे आग उठाकर उसका हाथ पकड़कर वह आगकी चिनगारी उसकी गरादीमें धर दो। वह तो कहने लगेगा अरे, रे रे, जल गए।···उस चिनगारीका तब तक धरे रहो जब तक वह यह न कहदे कि आग गरम होती है (हँसी)। तो जो प्रतीतिसिद्ध बात है उसमें कुयुक्तियाँ लगाये तो वह तो उसका अपलाप करना है। सारी दुनिया जानती है कि भीटका जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह भींटसे नहीं होता, वह ज्ञान तो आत्मामें है, यह अपने आपसे हुआ है और उस ज्ञानमें भींट ज्ञेय बन गया है। तो पदार्थ और प्रकाशसे उत्पत्ति न होकर भी ज्ञान पदार्थ और प्रकाशका प्रकाशक होता है जैसे दीपक।

ज्ञानको अर्थसे अजन्य माननेपर प्रतिनियत ज्ञानकी व्यवस्थामें शङ्का—एक सिद्धान्त ऐसा है जो ज्ञानकी उत्पत्ति पदार्थोंसे मानता है। जैसे भींटका ज्ञान किया तो वह ज्ञान भींटसे उत्पन्न हुआ और ऐसा माननेमें वे यह दलील देते हैं कि ज्ञान भींटको ही जान रहा है अन्य पदार्थको नहीं जान रहा है। इसका कारण यह है कि वह ज्ञान भींटसे उत्पन्न होता है तभी वह उस भींटको जानता है। तो ऐसा सिद्धांतवादी यहां शङ्का कर रहा है कि यदि पदार्थसे ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं मानते तो फिर ज्ञान समस्त पदार्थोंको जानने लगेगा। अभी तो यह व्यवस्था थी कि जो ज्ञान जिस पदार्थसे उत्पन्न हुआ है वह ज्ञान उस पदार्थको जानता है। यह व्यवस्था न माननेपर फिर एक ही ज्ञान समस्त पदार्थोंको जानने लगेगा ऐसी शंका करने वालेके प्रति आचार्य उत्तर देते हैं —

स्वावरणक्षयोपशमलक्षणयोग्यतया हि प्रतिनियमर्थं व्यवस्थापयति (२—१०)

स्वावरणक्षयोपशमरूप योग्यतासे प्रतिनियत अर्थज्ञानकी व्यवस्था—जो अर्थका प्रकाशक है वह अपने आपमें आवरण रहित होता है जैसे प्रदीप आदिक। प्रदीप यदि पदार्थका प्रकाश करता है तो वह प्रतिबंध रहित हो तो प्रकाश करता है। ज्ञानप्रकाशका प्रतिबंध क्या है ? कर्म। प्रतिनियत ज्ञानका प्रतिबंध है अपने अपने आवरण। जिस पदार्थका जो ज्ञान होता है उस ज्ञानका आवरण वही कहलाता है। जैसे मतिज्ञानका आवरण कर्म मतिज्ञानावरण है ऐसे ही घटज्ञानका आवरण घटज्ञानावरण है। तो अपने आवरणके क्षयोपशमसे हुई जो योग्यता, इसमें प्रतिनियत अर्थकी व्यवस्था बनती है। इससे अन्योन्याश्रय दोष भी नहीं दे सकते कि जब आवरणका क्षयोपशम सिद्ध हो तो उस पदार्थका जानना सिद्ध हो तो आवरणका क्षयोपशम सिद्ध हो। ऐसा अन्योन्याश्रय नहीं दे सकते क्योंकि योग्यता प्रतिनियत अर्थकी उपलब्धि होनेसे प्रसिद्ध ही है। ज्ञानकी जो शक्ति है वही ज्ञानको जो शक्ति है वही ज्ञानकी प्रतिनियत व्यवस्थाका कारण होती है। अर्थसे ज्ञानकी उत्पत्ति

हुई इसलिये पदार्थको ज्ञान जाने यह ठीक नहीं है और इसका पहिले ही निषेध कर दिया है। बहुत विस्तारपूर्वक यह सिद्ध किया गया कि ज्ञान न तो पदार्थसे उत्पन्न होता न प्रकाशसे।

दीपकवत् प्रकाश्यसे अजन्य होकर ज्ञानप्रकाशकी वृत्ति दीपक प्रकाश करता है भींट वगैरहको तो क्या यह बात है कि भींटसे प्रकाश उत्पन्न हुआ ? प्रकाश अपने कारणसे उत्पन्न हुआ है। अब उसका ऐसा निमित्त है कि भींट आदिक पदार्थ प्रकाशमें आ जाता है, नहीं तो कोई यों कहने लगेगा कि दीपक भींट आदिकसे उत्पन्न होता है क्योंकि दीपकने भींटका प्रकाश किया। दीपकने और सारे पदार्थोंका क्यों प्रकाश नहीं किया ? यही कारण है कि वह भींटसे उत्पन्न हुआ। यों वहां भी अडंगा लगा सकते। जैसे दीपक प्रकाशमय पदार्थोंसे नहीं उत्पन्न होता, फिर भी प्रकाश करता है इसी प्रकार यह ज्ञान प्रकाशमय ज्ञेय पदार्थोंसे नहीं उत्पन्न होता है। अपने ही कारण कलापोंसे और फिर पदार्थोंको वह जानता है। तब हम शंकाकारसे पूछेंगे कि क्यों जी, दिया, भींट आदिक पदार्थोंसे उत्पन्न होते नहीं तो वह पर्दाके भीतर पड़े हुये भींटके उस तरफ पड़े हुए पदार्थोंको क्यों नहीं प्रकाशित करता, जैसे कि बिना पर्दाके पदार्थोंको प्रकाशित करता है। दीपक सामनेकी चीजको क्यों प्रकाशित करता है, भींटके उस तरफकी चीजको क्यों नहीं प्रकाशित करता ? तो यह कहेंगे आप कि आवरण पड़ा है। तो यही बात ज्ञानपर है। ज्ञानपर आवरण पड़ा है इसलिये सब पदार्थोंको नहीं जानता। तो आवरण पड़ा है इसलिये सब पदार्थोंको नहीं जानता। तो आवरण पड़े हुए पदार्थको दीपक क्यों नहीं प्रकाशित करता। तो इसके उत्तरमें कहेंगे कि दीपकमें ऐसी ही योग्यता है, तो यही बात ज्ञान में भी लगावो— ज्ञानमें इस ही प्रकारकी योग्यता है कि वह अपने आवरणके क्षयोपशमके अनुसार पदार्थोंको प्रकाशित करे। इससे यह व्यवस्था अपने ही कारणसे बनती है कि ज्ञान इतनेको जानता है औरको नहीं जान पा रहा। और, जब कभी ज्ञानके सारे आवरण समाप्त हो जायेंगे तो सबको जानने लगेगा। पदार्थसे ज्ञान उत्पन्न होता है और फिर पदार्थ जानता है ऐसा माननेपर और भी दोष है जिसे आचार्य बताते हैं।

कारणस्य च परिच्छेद्यत्वे करणादिना व्यभिचारः ॥ २–११ ॥

कारणकी परिच्छेद्यताका अनियम - कारणको यदि परिच्छेद्य मानोगे, ज्ञेय मानोगे तो इन्द्रिय आदिकके साथ भी व्यभिचार होगा। ज्ञानके जो जो कारण हैं वे कारण ही जब ज्ञेय बन गए, जैसे कि ज्ञानकी उत्पत्ति पदार्थोंसे मानी है और पदार्थोंको ही वह ज्ञान जानता है, तो जिससे ज्ञान उत्पन्न हो उस हीको ज्ञान जानने लगे तो चक्षु आदिक इन्द्रियसे भी ज्ञान उत्पन्न होता है वह ज्ञान चक्षु आदि इन्द्रियको क्यों नहीं जानता ? ज्ञानका कारण इन्द्रिय भी है, ज्ञानका कारण अदृष्ट भी है, ये ज्ञानके

कारण हैं तो ज्ञानके द्वारा ये क्यों नहीं जाने जाते ? शायद यह कहो कि हम यह नहीं कहते कि जो जो कारण होता है वह ज्ञेय होता ही है, किन्तु यह कहते कि कारण ही परिच्छेद्य होता है, दूसरी चीज ज्ञेय नहीं हो सकती। यदि ऐसा कहोगे तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि योगियोंका जो ज्ञान है, प्रभुका जो ज्ञान है, अथवा व्याप्तिका जो ज्ञान है, तर्क प्रमाणमें जो ज्ञप्ति बनाई जाती है उस ज्ञप्तिके ज्ञानमें भी समस्त पदार्थ ग्रहणमें आते हैं और योगियोंके ज्ञानमें भी समस्त पदार्थ ज्ञेय होते हैं। तो वह जो ज्ञान है वह कैसे उत्पन्न हुआ, बतलाओ ? तो कारणसे तो नहीं हुए तब फिर उनकी सर्वज्ञताका अभाव हो जायगा क्योंकि जो पदार्थ समय समयमें नष्ट होते हैं और समय समयमें नये नये होते हैं तो जब ज्ञान हुआ तब पदार्थ नहीं है और जब पदार्थ है तब ज्ञान नहीं है, तो पदार्थ जाननेमें कैसे आयगा ? पदार्थ तो ज्ञानके कारण ही नहीं बन सकते। यदि प्रभुके ज्ञानका भी कारण पदार्थ माना जाय तो जब पदार्थ उत्पन्न हुए उस समय तो पदार्थोंने अपने स्वरूपकी रचनामें ही अपना जीवन लगा लिया। ज्ञान होगा दूसरे समयमें। जब पदार्थ उत्पन्न हो चुके तब तो ज्ञान होगा। जब पदार्थ उत्पन्न हो चुकता तो वह तुरन्त नष्ट हो जाता, यह क्षणिकवादका सिद्धान्त है। तब फिर योगिज्ञान और व्याप्तिज्ञान ये भी कुछ कम नहीं रहे। इससे यह बात सिद्ध नहीं हो सकती कि ज्ञान जितने होते हैं वे पदार्थसे उत्पन्न होते हैं। ज्ञान ज्ञानका स्वभाव है अपने स्वभावसे ही उत्पन्न होते। ज्ञानमें ऐसा स्वरूप पड़ा हुआ है कि वह समस्त पदार्थोंको जाने। किन्तु आवरण होनेके कारण ज्ञान रुका रहता है। सबको जान नहीं सकता। आवरण दूर हो तो सबका ज्ञान हो जायगा, तो ज्ञानकी उत्पत्ति पदार्थोंसे नहीं होती है।

प्रमाणविवरणमें स्वरूप उत्पत्ति आदिका विचार—यह सब प्रमाणका स्वरूप सही करनेके लिये कहा जा रहा है। प्रमाण उस ज्ञानको कहते हैं जो स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय कराये। ज्ञानकी चर्चा चल रही है कि वह ज्ञान कैसे उत्पन्न होता ? तो क्षणिकवादी यह कह रहे हैं कि ज्ञानकी उत्पत्ति पदार्थोंसे होती है। पर पदार्थोंसे ज्ञान उत्पन्न होने लगे तो ज्ञानका कोई निजी तत्व नहीं रहा। जिसकी पदार्थसे उत्पत्ति हुई वह तो पदार्थकी चीज होगी। फिर ज्ञान कहाँ रहा ? ज्ञान स्वयं है जो अपने ही स्वरूपसे अपने आपका प्रकाशक है। किसी पदार्थ आदिकसे ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ है। और, भी दोष है। जब आकाशमें कोई केशोंका भ्रम हो जाता है या अपनी ही आंखोंके पलकके रोम कुछ ऐसे नजर आते हैं कि उसमें भ्रम हो जाता है, तो वह ज्ञान तो उसका भ्रम ज्ञान है. उसके उत्पन्न करने वाला तो कोई है ही नहीं तो वह ज्ञान होगा। पदार्थोंसे तो उत्पन्न नहीं हुआ तब फिर कुछ ज्ञान ही न कर सकेगा। और, फिर देखिये ! इन्द्रिय कारणताकी समानता होनेपर भी इन्द्रियका ग्रहण क्यों नहीं होता ? कारण ही परिच्छेद्य सही, पर कारण जैसे अर्थ है इसी तरह इन्द्रिय भी हैं ज्ञानके कारण, उनका बोध क्यों नहीं होता ? यदि कहो कि अयोग्यता

है इन्द्रिय आदिकको जाननेकी तो योग्यता ही कारण मान लो, योग्यतासे ही ज्ञानकी व्यवस्था बनती है, अन्य कल्पनाएँ करना व्यर्थ है।

कारणकी परिच्छेद्यताकी असिद्धि होनेसे ज्ञानकी अर्थजन्यताका निराकरण यदि यह कहो कि इन्द्रियाँ उस ज्ञानको अपना आकार नहीं समर्पण कर सकतीं इसलिए ज्ञान इन्द्रियको नहीं जानता। उनका सिद्धान्त है कि पदार्थसे ज्ञान उत्पन्न होता है और यह पदार्थ ज्ञानको अपना आकार सौंप देता है तब ज्ञान पदार्थको जानता है। तो उन्होंने कहा है कि इन्द्रियां अपना आकार नहीं सौंप पातीं इसलिए इन्द्रियोंको ज्ञान नहीं जान पाता। अपने आकारके अर्पण करनेकी बात तो होती नहीं कोई भी पदार्थ ज्ञानको आकार नहीं सौंपा करता, और फिर इसमें भी प्रश्न किया जा सकता कि जब कारणपना दोनोंमें समान है फिर भी कारण है ज्ञान, और इन्द्रिय भी कारण है ज्ञानका, तो पदार्थ तो ज्ञानको अपना आकार सौंप दे और इन्दियाँ ज्ञानको अपना आकार न सौंपें, इसमें कौनसा नियम है? इसमें भी अगर योग्यता कहोगे तो सब जगह योग्यता मान लो। ज्ञानमें जैसी योग्यता है वह ज्ञान उस योग्यताके अनुसार पदार्थोंको जानता है और फिर जितने भी ज्ञान हैं वे सब ज्ञान समस्त अर्थोंका पदार्थोंका कार्य क्यों नहीं हो जाते? यदि कहो कि पदार्थोंकी ऐसी ही जुदी–जुदी शक्तियाँ हैं, वे समस्त पदार्थ ज्ञानमें नहीं आ पाते, तो यही बात ज्ञेय ज्ञायकमें भी लगा लो। ज्ञेय ज्ञायककी ऐसी ही शक्तियाँ हैं कि यथापद किसी पदार्थमें कोई ज्ञान आता है कोई नहीं। इस प्रकार यह बात निराकृत हुई कि ज्ञानकी उत्पत्ति पदार्थसे होती है। ज्ञान अपने कारणसे होता है और पदार्थ उसमें ज्ञेय हो जाता है।

सांव्यवहारिक प्रत्यक्षके वर्णनकी पूर्वसङ्गति-- प्रथम परिच्छेदमें प्रमाणका स्वरूप कहा गया था, अब इस परिच्छेदमें प्रमाणके भेद बताये जा रहे हैं। प्रमाणके मूलमें दो भेद हैं (१) प्रत्यक्ष, (२) परोक्ष। कुछ सिद्धान्त भेदोंकी इस मौलिकताको न मानकर प्रत्यक्ष अनुमान उपमान आदि अनेक प्रकारोंमें २–३ आदि अनेक प्रकारमें भेद करते हैं, किन्तु वे प्रकार परोक्षमें अन्तर्भूत हो जाते हैं और जो वस्तुतः प्रत्यक्ष है मुख्य प्रत्यक्ष है उसका दर्शन भी वहाँ नहीं हो पाता है। प्रत्यक्षका लक्षण किया गया है कि जो विशद ज्ञान हो वह प्रत्यक्ष है। इस लक्षणसे दार्शनिक क्षेत्रमें सांव्यवहारिक प्रत्यक्षकी प्रत्यक्षता सिद्ध होती है जिससे कि अन्य दार्शनिकोंसे वादका एक सम्बन्ध बनता है। सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष वास्तवमें प्रत्यक्ष न बन जाय इस बचावके लिए मैं एकदेश विशद कहकर सिद्धान्तका विरोध मिटाया है। यह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष इन्द्रिय और मनके निमित्तसे उत्पन्न होता है। इस सम्बन्धमें कुछ सिद्धान्तवादियोंने कहा कि ज्ञान पदार्थ और प्रकाशसे उत्पन्न होता है उसका यहां निराकरण किया है। हम लोगोंके ज्ञान अपने आवरण कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न होते हैं और इसी योग्यतासे यह व्यवस्था भी बनती है कि अमुक ज्ञान अमुक पदार्थको जाननेवाला

है। इस प्रकार प्रत्यक्षके भेदोंमें सांव्यवहारिक प्रत्यक्षका वर्णन हुआ। अब मुख्य प्रत्यक्षके सम्बन्धमें वर्णन चलेगा।

परीक्षामुखसूत्र-प्रवचन

[दशम भाग]

[प्रवक्ता — अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" जी महाराज]

प्रमाणके भेदोंमें मुख्य प्रत्यक्षके वर्णनका उपक्रम— समस्त पदार्थोंमें ज्ञानतत्त्व ही सारभूत है, ज्ञानके द्वारा ही समस्त व्यवस्था है और संज्ञी लोकमें तो ज्ञानकी ही महिमा चलती है। ज्ञान ही प्रमाण होता है, अमुक बात सही है अथवा नहीं, यह निर्णय ज्ञानसे ही किया जाता है। तो ज्ञान होनेपर कि समस्त व्यवस्था, सत्य पथपर चलना, कुपथसे हटना आदि अपना सारा भविष्य निर्भर है, वह ज्ञान किस प्रकारका स्वरूप रखता है इस सम्बन्धमें वर्णन चल रहा है। जो अपना और पर पदार्थोंका निश्चय करे उस ज्ञानको प्रमाण कहते हैं। ज्ञानमें यह खासियत है कि वह अपने स्वरूपका भी निश्चय रखता है और पदार्थका भी निश्चय रखता है। ज्ञान दो प्रकारका कहा गया है—एक प्रत्यक्ष, दूसरा परोक्ष। प्रत्यक्षका यद्यपि सिद्धान्तमें यह लक्षण है कि जो इन्द्रिय मनकी सहायताके बिना केवल आत्मशक्तिसे उत्पन्न हो उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। इस सिद्धान्तका भी विरोध न करके दार्शनिक शैलीसे प्रत्यक्षका लक्षण कहा गया है — जो स्पष्ट ज्ञान हो उसे प्रत्यक्ष कहते हैं और इस लक्षणके अनुसार दो प्रकारके प्रत्यक्ष हुए - एक तो एकदेश स्पष्ट ज्ञान होना—उसे कहते हैं सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष। और दूसरा सर्वप्रकारसे विशद हो, स्पष्ट ज्ञान हो उसे कहते हैं मुख्य प्रत्यक्ष। सांव्यवहारिक प्रत्यक्षके विषयमें वर्णन हो चुका था, अब मुख्य प्रत्यक्ष के सम्बन्धमें उसका स्वरूप और उसकी उत्पत्तिका कारण बताते हुए सूत्र कहते हैं।

सामग्रीविशेषविश्लेषिताखिलावरणमतीन्द्रियमशेषतो मुख्यम् ॥ २–१० ॥

मुख्य प्रत्यक्षका निर्देशन— मुख्य प्रत्यक्ष वह होता है जो सर्व प्रकारसे स्पष्ट हो। मुख्य प्रत्यक्षमें अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये तीन ज्ञान आये। तीनों ज्ञान अपने विषयमें स्पष्ट हैं। जितनी स्पष्टता हम आप लोगोंको इन्द्रियोंसे